हिन्दू पुराणों की नीति कथाएँ

डॉ.एम.आर.राजेश्वरी

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
2019

HINDU PURAANON KI NEETHI KATHAAYEN

Translated by
Dr.M.R.Rajeswari

English Original
Kolaru Krishna Iyer

T.T.D. Religious Publications Series No. 1371

First Edition : 2019

Copies : 500

Published by :
Sri ANIL KUMAR SINGHAL, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

D.T.P:
Publications Division,
T.T.D, Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati.

पूर्वोक्ति

अनादि समय से ही 'कथा लेखन' भारत की पारंपरिक साहित्यिक कला रही है । कथा कहने की एक विशेष पद्धति 'कथा कथन शिल्प' छोटे - बडे सभी को आकृष्ट करती आई है । वाल्मीकि महर्षि कृत रामायण के, बालकांड़ में बलराम एवं लक्ष्मण को विश्वामित्र के द्वारा अनेक कथाएँ सनाई गई हैं । सामान्तया जो कहानियाँ शैशवावस्था में सुनी जाती हैं, उनको हम भूल ही नहीं पाते हैं । भारत देश जो आध्यात्मिक चिंतन में समूल दृढ़ है, उसकी गाथाओं ने तो हर भारतवासी पर अपना छाप छोड़ दिया है ।

कथाओं का श्रवण किसको भाती नहीं है? हर छोटा, बड़ा, बूढ़ा व्यक्ति कथा को सुनना पसंद करता है । कथा वाचन ही एक ऐसी शैली है जिसमें किसी भी विषय का बड़े विस्तार एवं अर्थवंत रुप से प्रस्तुतीकरण होता है ।

'हिन्दू पुराणों की नीतिगाथाएँ', प्रथमतः श्री कोलार कृष्ण अय्यर के द्वारा अंग्रेजी भाषा में 'Moral Fables from Hindu Mythology' लिखी गई है । इन्होंने अनेककहानियों का चयन रामायण से, महाभारत से, भागवत से एवं अन्यान्य पुराणों से किया तथा उनको प्रस्तुत किया । इन्होंने तेलुगु प्रांत की गाथाओं के साथ - साथ इस ग्रंथ में उसके इर्द- गिर्द के प्रांतों यथा - तमिल, कन्नड, मलयालम साहित्य के रसात्मक गाथाओं को मनाकर्षक रूप में प्रस्तुत किया ।

अंग्रेजी मूल ग्रंथ को डॉ.एम.आर.राजेश्वरी ने हिन्दी में अनुवाद करके आपके सामने प्रस्तुत किया है । 'हिन्दू पूराणों की नीतिगाथाओं'

में प्रस्तुत भावोत्पादक गाथाएँ, हिन्दी प्रातों में प्रसारित करना ही इस अनुवाद का मूल उद्देश्य है ।

आशा करते हैं कि इस ग्रंथ को पढ़कर उत्तर भारत के लोग भी दक्षिण भारत के मनोभावों से उत्तेजित होकर, उमंग भरे हृदय से इस ग्रंथ का स्वागत करेंगे और पढ़कर रसास्वादन करेंगे ।

सदा श्रीहरि की सेवा में,

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

विषय-सूची

1.सूरदास

सूरदास, श्रीकृष्ण के अन्य भक्त थे । वे अंधे थे । एक बार यात्रा करते समय, वे एक सूखे कुँए में गिर गये । उन्होंने तब, भगवान से इस प्रकार प्रार्थना की - 'हे भगवान! मैं अंधा हूँ , मैं कुँए से बाहर निकल नहीं पा रहा हूँ, कृपया मेरी रक्षा करो, तुम ही मुझे बचा सकते हो!'

भगवान श्रीविष्णु राधा सहित उधर पहुँचकर, सूरदास को कुँए से बाहर निकाला । उनकी बातचीत से सूरदास ने पहचान लिया था कि वे साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण और राधा थे । तब सूरदास ने उनकी प्रार्थना की, यथा - 'हे भगवान! मैं आपकी वाक् को सुन पा रहा हूँ, मैं अंधा हूँ इसलिए मैं आपको देख नहीं पा रहा हूँ ।'

भगवान श्रीमहाविष्णु सूरदास के साथ परिहास करना चाहते थे, इसलिए वे राधा से ऊँची आवाज में कहने लगे - 'राधा! उसके निकट मत जाओ, वह तुम्हारे पैर पकड़ लेगा ।' राधा, सूरदास के पीछे जाकर, उसे छुआ ।

सूरदास ने कहा - 'आप मेरे पीछे खडी हैं क्या?' ऐसा कहते हुए सूरदास ने घूमकर राधा के पैर पकड़ लिया । राधा ने एनकेन प्रकारेण अपने पैर छुडा लिए । पैर तो छुड गये लेकिन सूरदास के हाथों में राधा के पायल आ गये थे ।

राधा ने सूरदास से पूछा - 'मुझे मेरे पायल वापस दे दो । वे भगवान श्रीकृष्ण के लिए बहुत प्रिय हैं ।'

सूरदास ने उत्तर देते हुए कहा - 'मैं तो अंधा हूँ । मैं कैसे ही जानूँ कि ये पायल आप के ही हैं? मैं तभी पहचान पाऊँगा जब मैं देख पाऊँ । इसलिए, श्रीकृष्ण से कह दो कि वे मुझे दृष्टि (देखने की योग्यता) दें ।'

तुरंत ही सूरदास का अंधापन दूर हुआ और वे भगवान श्रीकृष्ण और राधा को देखने लगे ।

श्रीकृष्ण ने कहा - 'कोई वर माँगो । मैं तुम्हें दूँगा ।'

सूरदास ने तब ऐसा उत्तर दिया - 'हे भगवान! तुम्हारे मनोहर दिव्य साकार रूप को देखने के बाद, मेरे अंदर इस विश्व के किसी दूसरी वस्तु को देखने की इच्छा नहीं रह गई है। मुझे तुरंत पुनः अंधा बना दो ।'

सूरदास का श्रीकृष्ण के प्रति का भक्तिभाव इतना श्रेष्ठ था ।

2.कर्ण : श्रेष्ठ दाता

एक बार भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा - 'हे अर्जुन! तुम धनुर्विद्या में श्रेष्ठ हो सकते हो, लेकिन दान देने में कर्ण का समवर्ती कोई नहीं है ।

अर्जुन ने अपमान मेहसूस करते हुए कहा - 'आप सदा कर्ण की प्रशंसा करते हो, दान देने में मैं कर्ण से कहीं कम नहीं हूँ ।'

श्रीकृष्ण ने केवल एक मुस्कान फेंकी ।

तभी उन दोनों ने कहीं दूर से एक ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखा । ब्राह्मण इनके निकट आया और अर्जुन से याचना की, यथा - 'हे राजा! मेरी पत्नी का देहांत हुआ । उसके दहन संस्कार के लिए मुझे लकडी तथा चंदन लकडी चाहिए । क्या आप इन्हें दिलवा सकते हैं?'

अर्जुन ने अपने एक सेवक को बुलाकर, ब्राह्मण द्वारा माँगी गई वस्तुओं को ले आने के लिए आज्ञा दी । सेवक गया और थोडी देर बाद खाली हाथ लौट आकर कहा - 'हे राजा! किसी प्रकार की लकडी न आपके भवन में और ना ही इस गाँव में उपलब्ध है।' अर्जुन ने ब्राह्मण से खेदपूर्वक निःसहायता का भाव प्रकट किया । ब्राह्मण ने यह कहकर वहाँ से चला गया कि मैं कर्ण के पास जाकर मदद माँगूँगा । ब्राह्मण सीधे कर्ण के पास गया और उससे लकडी एवं चंदन लकडी माँगी ।

कर्ण ने अपने सेवक को भेजकर ब्राह्मण का मुँहमाँगा चीज ले आने के लिए कहा । वह सेवक भी यह कहते हुए खाली हाथ लौटा कि न कर्ण के भवन में और ना ही उस गाँव की दूकानों में लकडी उपलब्ध था । निराश होकर, ब्राह्मण वहाँ से वापस लौटने लगा । इतने में कर्ण ने उस ब्राह्मण से कहा - ''कृपया रुकिये । मेरे पास आने वाला याचक, खाली हाथ लौटे, यह मुझे पसंद नहीं है, मेरे भवन के स्तंभ चंदन के बने हैं ।'' कर्ण ने अपने सेवक को आज्ञा दी - 'जाकर एक कुल्हाडी लेकर आओ ।' फिर कर्ण ने सेवक को आज्ञा दी - ''मेरे भवन के सभी स्तंभों को काट डालो, वह इनके लिए काम आयेगा ।''

जब सेवक स्तंभों को काट रहा था, तब महल का एक भाग टूट पडा । तब कर्ण ने सेवक से कहा - 'इन लकडियों को ढंग से गाडी में रखकर उस ब्राह्मण के साथ भेजो ।

अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण ने चंदन लकडी से भरी गाडी को देखा । ब्राह्मण ने उन्हें सविस्तार बताया कि कैसे कर्ण ने अपने महल की लकडी को कटवाया था ।

तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा - 'क्यों अर्जुन! क्या तुम कम - से - कम अब स्वीकार करोगे कि कर्ण दान देने में कितना समर्थ है?

3.भीम और हनुमान

प्रवास के समय पाण्डव, नारायाणाश्रम नामक एक जगह में ठहरे हुए थे ।

एक दिन द्रौपदी ने एक अत्यंत सुंदर कमल के फूल को देखा था जिसके एक हजार पंखुडियाँ थी । द्रौपदी ने पति भीम से यह कहा था कि वे अपने लिए कुछ और कमल के फूल ले आयें । भीम ने यह कहा था कि मैं तुरंत ले आऊँगा । भीम, उनकी तलाश में निकला । वह गंधमादन

पर्वत पर गया जहाँ अनेक भाँति के फूल खिलते हैं । रास्ते में केले की वाटिका में श्रीरामचंद्रमूर्ति के अन्यतम भक्त श्री हनुमान, राम नाम का जाप कर रहे थे । वे भीम के बडे भाई थे । उन्होंने दूर से अपने भाई को आते हुए देखा और अपनी पूँछ को बढाकर भीम के मार्ग में डाल दिया । भीम ने इसे देखा । हनुमान को सामान्य जंगली बंदर समझकर यह सोचा कि जीवंत प्राणियों के किसी भी भाग को लांघना उचित नहीं है । ऐसी सोच से भीम ने गंभीर आवाज में चिल्लाया! 'हे बंदर! तुम्हारी पूँछ को मेरे रास्ते से हटाओ ।'

हनुमान ने उत्तर दिया - 'हे महात्मा! मैं बहुत बूढा हूँ, इतनी लंबी पूँछ को मैं हिला नहीं सकता, आप स्वयं पूँछ को रास्ते से हटाओ और आगे बढो ।'

भीम ने पूँछ को हटाने का वृथा प्रयास किया । तब भीम को लगा कि यह बंदर सामान्य प्राणी नहीं हो सकता । वह कोई पुण्यात्मा ही छद्म रूप में उपस्थित रहा होगा । उसने, तब बंदर का संबोधन करते हुए ऐसा कहा - 'हे परमात्मा आप सामान्य प्राणी नहीं हो, आप कृपया अपना निजी रूप दिखाओ ।'

मैं भीम हूँ, कुंती का पुत्र तथा पाण्डव युधिष्ठिर का भाई । हनुमान ने मुस्कुराकर कहा - 'मैं आपका भाई हनुमान हूँ । तालाब यहाँ से अति निकट है, जाकर फूलों को इकट्ठा करो ।' ऐसा कहते हुए, हनुमान ने अपनी पूँछ को उसके रास्ते से हटाया ।

भीम ने नमन करते हुए कहा : 'हे भैया! मैं ने जो साहस किया, उसके लिए माफी चाहता हूँ । मुझे अपना असली रूप दिखाइए ।'

हनुमान ने भीम को अपना निज रूप दिखाकर उस पर कृपा की और कहा - 'भाई भीम! वयोवृद्धों के प्रति मर्यादा का भाव रखो, अपनी शक्ति के प्रति जो अहंकार है, उसे छोड दो । आप जिस काम पर आए

हो, उसमें सफलता पाओगे ।' ऐसा कहने के बाद, हनुमान ने श्रीराम का नाम जप करना प्रारंभ किया ।

भीम आगे बढकर तालाब पर पहुँचा, वहाँ से कमल के फूल इकट्ठा किए तथा वापिस लौटकर द्रौपदी को दिया । द्रौपदी अति प्रसन्न हुई ।

4.'पूरी' मंदिर की मूर्ति

कलिंग देश के राजा ने भगवान जगन्नाथ के लिए एक मंदिर बनवाया । उसने उसमें जगन्नाथ की अति सुंदर मूर्ति का प्रतिष्ठापन करना चाहा । राजा ने पूरे देश में इस बात की सूचना पहुँचाई -

''अपने द्वारा बनाये गये मंदिर में राजा भगवान जगन्नाथ की अति सुंदर मूर्ति का प्रतिष्ठापन करना चाहते हैं । जो शिल्पी मूर्ति को बनाकर राजा को संतुष्ट करेगा, उसको राजा दस हजार स्वर्ण मुद्रायें भेंट देगा । लेकिन एक ड्डार्त है : अगर शिल्पी राजा को संतुष्ट नहीं कर पायेगा, तो उसका सिर काट दिया जाएगा ।''

अपने सिर के कटने के भय से कोई आगे नहीं आया ।

लेकिन एक वृद्ध शिल्पी ने राजा से आकर कहा - ''हे राजा! मैं मूर्ति का निर्माण कर सकता हूँ लेकिन मेरी एक शर्त है ।'' राजा ने आश्चर्य चकित होकर पूछा - 'आपकी शर्त क्या है?''

'हे राजा! मूर्ति तीस दिनों में तैयार हो जाएगी, और इन दिनों के दौरान मंदिर को बंद रखना होगा । जैसे भी हो, इन तीस दिनों में किसी को भी, स्वयं आपको भी मंदिर को खोलना नहीं होगा ।' राजा ने शर्त स्वीकार की ।

वृद्ध शिल्पी ने मंदिर को बंद करके अपना काम प्रांरभ किया । मंदिर के बाहर लोग छेनी की आवाज सुनने लगे थे - टन...टन...टन... ।

मंत्री ने राजा से कहा - 'हे राजा! मंदिर के अंदर अकेले शिल्पी ही रहता है। लेकिन जो आवाज हम सुनते हैं वह ऐसा सुनाई पडती है मानों हजारों मजदूर अंदर काम कर रहे हों। मुझे शंका हो रहा है कि शिल्पी मूर्ति का निर्माण कर रहा है या बहुतों के साथ मिलकर अंदर से मंदिर तोड रहा हैं? संदेह छेनियों की आवाज के कारण हो रहा हैं।

राजा ने कहा - 'मैने उसकी शर्त को माना था। इसलिए एक महीने तक मंदिर खोल नहीं सकता। और आज तक तो काम प्रारंभ होकर केवल दस दिन ही हुए हैं। चंद और दिनों के लिए हम रुकेंगे।

दस दिन बीत गये। बंद मंदिर के अंदर से भयंकर आवाज निरंतर आने लगी। इसलिए मंत्री महोदय पुनः राजा से मिलना चाहा। राजा से मिलकर वह ऐसा कहने लगा - 'हे राजा! मुझे संदेह हो रहा है कि वह वृद्ध शिल्पी शायद ही अपना कार्य कर रहा हो। संभव है कि वह हमारे शत्रुओं का दूत हो और इस मंदिर को धराशायी बनाने के लिए शिल्पकार के भेष में आया हो।'

राजा ने जवाब दिया - 'तीस दिन पूरा होने तक हमको रुकना होगा, क्योंकि मुझे अपने वचन का पालन करना ही होगा।'

राजा स्वयं ने आकर मंदिर से आनेवाली भयंकर आवाज को सुना। इसे सुनकर राजा तीस दिनों की पूर्ति तक रुक नहीं पाया।

अगले दिन, राजा ने जबरदस्त मंदिर के दरवाजे को खुलवाया। राजा तथा दरबारी अधिकारी मंदिर के अंदर घुसे। मंदिर को कोई नुकसान पहुँचाया नहीं गया।

अरे! राजा आश्चर्यचकित हुआ।

जिस मूर्ति को शिल्पी बना रहा था, वह अनाकारी व कुरूपी शिल्प था। राजा गुस्से में आकर शिल्पी को डाँटते हुए चिल्लाने लगा - 'क्या

इसी को सुंदर शिल्प मानते हो?' तब शिल्पकार ने उत्तर दिया - 'हे राजा! तुमने तीस दिनों तक दरवाजा नहीं खोलने का वचन दिया था । क्या चंद दिनों के लिए आप रुक नहीं सके? मैं तो भगवान जगन्नाथ की सुंदर मूर्ति बनाने वाला था ।

राजा ने जवाब दिया - 'हम मंदिर के अंदर इसलिए आये क्योंकि इसके अंदर से भयंकर आवाज सुनाई दे रही थी ।'

तब शिल्पी ने राजा से कहा - 'भगवान हर जगह रहता है, चाहे मूर्ति सुंदर हो या असुंदर, इसी बात को आप तक पहुँचाने के लिए मैंने इस बदसूरत मूर्ति को बनाया है । एक सुंदर मूर्ति के साथ - साथ इस बदसूरत शिल्प को भी इस मंदिर में प्रतिष्ठित करवाइए ।' ऐसा कहते हुए शिल्पकार ने अपना छद्म भेष छोडा । वह स्वयं जगन्नाथ था । वह स्वयं एक सुंदर मूर्ति में परिणत हुआ और उसी मंदिर में स्थापित हो गया ।

5.प्रेम ही भगवान को भाता है

एक बार दूर्वास मुनि, देवताओं के शहर अमरावती में गये ।

पूरा शहर उत्सव शोभा से झलक रहा था ।

दूर्वास ने वहाँ उपस्थित नारद से इसके बारे में पूछताछ किया - 'इस धूमधाम उत्सव का क्या कारण है?'

नारद ने जवाब दिया - 'आज पूर्णिमा का दिन है, देवताओं के राजा इंद्र, माता (अदिति) की पूजा कर रहे हैं ।' उत्सव की वैभवात्मक तैयारियों को देखकर दूर्वास मुनि आश्चर्य चकित हुए । सैकडों सुवर्ण थालियों में फूलों को सजाकर माँ की पूजा के लिए रखे जा रहे थे । दूर्वास मुनि, इन तैयारियों के बारे में माँ को स्वयं बताना चाह रहे थे । वे माँ के द्वार पर गये । द्वार पालकों ने मुनि से कहा - 'हे मुनिवर! माँ

बीमार हैं । आप उनसे अभी मिल नहीं सकते ।' द्वारपालकों की बातों को नजरंदाज कर मुनि सीधे माँ के कक्ष में गए जहाँ देव माता शैय्या पर लेटी हुई थी ।

मुनि ने देवी माँ से पूछा - 'माँ! आप बीमार क्यों पडी? आप तो इससे परे हो ना?' देव माता ने उसका जवाब ऐसा दिया - 'यह सब देवेन्द्र के कारण हुआ जो अपनी संपदा को दिखावे के लिए मेरी पूजा स्वर्ण पुष्पों से कर रहा है । हर स्वर्ण पुष्प ने मेरे शरीर पर लगकर घाव ही छोडा है ।'

दूर्वास ने माँ से प्रश्न पूछा - 'यह बताइए माँ कि आपकी चिकित्सा कैसे किया जाय?' माँ ने जवाब दिया कि 'वारणासी के विशालाक्षी मंदिर में एक व्यक्ति है जो मेरी चिकित्सा करने में समर्थ है ।'

दूर्वास मुनि तुरंत वारणासी गए । वहाँ उन्होंने मंदिर में एक व्यक्ति को रोते हुए देखा । वह व्यक्ति माँ के चरणों पर अश्रु बरसा रहा था । मुनि ने उनसे पूछा कि वहाँ कहीं कोई चिकित्सक मिल सकता है क्या? लेकिन उन्हें कोई जवाब नहीं मिला । मुनि ने वारणासी के कई जगहों पर चिकित्सक के बारे में पूछ - ताछ किया, लेकिन उनके सारे प्रयास व्यर्थ गये ।

दूर्वास मुनि पुनः माँ के द्वार पर लौट आये । आश्चर्य की बात थी कि देव माता बडे आनंद के साथ नृत्य कर रही थी । माँ ने मुनि से प्रश्न किया - 'क्या आपको चिकित्सक मिला?' 'नहीं माँ, मुझे मंदिर में कोई नहीं मिला । केवल एक व्यक्ति उस मंदिर की देवता के चरणों में अश्रु बहा रहा था ।'

देवमाता ने मुस्कुराकर दूर्वास मुनि से कहा - 'जो वृद्ध तुम्हें दिखाई दिया, वही मेरा चिकित्सक है । उसके द्वारा बहाये गये अश्रु के हर बूँद ने मेरे शरीर के हर घाव को भर दिया ।'

दूर्वास मुनि को यह समझ आया कि जो उत्सव संपदा एंव वैभव के साथ मनाये जाते हैं, उनसे माँ संतुष्ट नहीं होती बल्कि जो व्यक्ति प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक अश्रु बहाता है, वही देवमाता को प्रसन्न कर सकता है ।

6.जय और विजय (वैकुंठम के द्वारपालक)

सृष्टि कर्त्ता ब्रह्म ने चार बच्चों - सनक, सनंदन, सनातन तथा सनतकुमार का सृजन किया था । इन्होंने शाश्वत रूप से बालक ही रहने का वर पाया था । इन्हें अनंत शक्ति भी प्राप्त था । उन्हें स्वेच्छापूर्वक कहीं भी घूमने का वर प्राप्त था ।

एक दिन वे वैकुंठवासी भगवान श्रीमहाविष्णु से मिलने गये थे । उनको सात द्वार पार करके जाना था । वे छः द्वारों को पार कर सातवें द्वार पर आये । वहाँ जय और विजय द्वारपालक बनकर खडे थे । उन्होंने मुनियों को उस द्वार को पार कर अंदर जाने से मना किया और ऐसा कहा - 'आप ने ढंग के कपडे नहीं पहना ।' बालकों ने जवाब दिया - 'हम भगवान ब्रह्म के बच्चे हैं । हम भगवान श्रीमहाविष्णु का दर्शन करना चाहते हैं । आप हमें रोकने की कोशिश मत करो ।' इतने में जय ने कर्कश स्वर में कहा - 'हे बच्चों, जिद्द मत करो, यहाँ ऊधम मत मचाओ, हम गर्दन पकडकर आपको बाहर कर देंगे ।'

द्वार पर आये बच्चे इस अपमान को सह नहीं पाये और बहुत क्रुद्ध हो गये । उन्होंने दोनों द्वारपालक जय तथा विजय को ऐसा कहकर शाप दिया -

'हे जिद्दी लोगों! आप इस पवित्र स्थल पर ठहरने के योग्य नहीं हो। आप भूलोक में असुरों (राक्षसों) के रुप में जन्म लो । द्वारपालकों को अपने पाप कर्म का अहसास हुआ । पश्चात्ताप में वे उन मुनि बालकों के

चरणों में गिरकर याचना की तथा शाप शमन के उपाय बताने के लिए प्रार्थना की । उसी समय श्रीमहालक्ष्मी समेत श्रीमहाविष्णु वहाँ पधारे । चारों मुनि बालकों ने दिव्य दंपति को प्रणाम करके उनकी स्तुति की ।

जय - विजय ने अपने मालिक भगवान श्रीमहाविष्णु की प्रार्थना की यथा, - 'हे भगवान हमें क्षमा करो, हमें शापमुक्त करो ।' तब भगवान ने कहा - 'हे मुनि पुंगव! जरा विचार करो! शाप को वापस लो ।'

मुनिबालकों को द्वारपालकों पर करुणा उभर आई और उन्होंने जय तथा विजय से पूछा - 'आप एक सौ योनियों में जन्म लेकर भगवान श्रीमहाविष्णु के भक्त बनकर जीना चाहते हो या तीन योनियों में भगवान के शत्रु बनकर जीना चाहते हो?' उत्तर में उन्होंने ऐसा कहा - 'एक सौ जन्म लेकर उतने लम्बे समय तक भगवान से दूर रहने की बजाय हम तीन जन्मों का ही चयन करेंगे ।'

तुरंत ही भगवान श्रीमहाविष्णु ने उनसे कहा - 'आपकी प्रार्थना हमें स्वीकार है । भूलोक जाकर असुर बन जाओ ।'

जय और विजय ने असुरों के रूप में -

पहली योनी में - हिरण्याक्ष तथा हिरण्य कशिपु

दूसरी योनी में - कुंभकर्ण एवं रावण

तीसरी योनी में - शिशुपाल तथा दंतवक्र

के रूप में जन्म लिया । उपर्युक्त योनियों में जन्म लेकर उन्होंने श्रीमहाविष्णु से शत्रुता रखी तथा उन्हीं के हाथों मारे गये । श्रीमहाविष्णु ने नरसिंह, श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के अवतार ग्रहण कर असुरों का संहार किया ।

7. राजा की कृपा या भगवान की कृपा?

कन्नपुरी के राजा का नाम सुंदरवरदन था । वह हर क्षेत्र में निष्णात था लेकिन भगवान पर उसका कोई विश्वास नहीं था ।

एक दिन राजा अपने मंत्रियों के संग पूरे नगर में घूमने के लिए छद्म भेष में निकला था । मार्ग में उन्हें दो याचक दिखाई दिये । एक व्यक्ति इस प्रकार याचना कर रहा था -

'हे माता! राम की कृपा से दान दो, राम की दया से' दूसरा याचक बोल रहा था - 'हे माँ! राजा की कृपा से दान दो । राजा की कृपा से... ।' इन दोनों याचकों को राजा के दरबार में अगले दिन प्रस्तुत किया गया । इन से एक प्रश्न पूछा गया था - 'आप दोनों में से एक के द्वारा श्रीराम के नाम पर तथा दूसरा राजा के नाम पर भिक्षा माँगी जा रही थी, ऐसा क्यों कर रहे थे?'

जो भगवान के नाम से भिक्षा माँग कर रहा था, उसने ऐसा कहा - 'पूरा विश्व श्रीराम की कृपा से सुरक्षित है । वही सभी को संपदा एंव स्वास्थ्य प्रदान करता है, इसलिए मैं उसका नाम ले रहा था ।' दूसरे ने कहा - 'भगवान को कोई देख नहीं सकता वह अदृश्य देवता है । लेकिन राजा दिखाई देने वाला देवता है । वही आदमी को पैसा देकर धनवान बनाता है । इसीलिए मैं राजा का नाम लेकर भीख माँगता हूँ ।'

भिखमंगों को वहाँ से भेज दिया गया । राजा ने मंत्री से कहा - 'हे मंत्री! मेरा नाम लेकर भीख माँगनेवाला, इस से अधिक चतुर है ।' लेकिन मंत्री ने ऐसा कहा - 'हे राजन! जब तक भगवान की कृपा किसी व्यक्ति पर नहीं होती, तब तक हमसे प्रदत्त सहायता भी उस तक नहीं पहुँचती ।' राजा ने कहा - 'ठीक है! हम परीक्षा लेना चाहते हैं कि किसकी कृपा ज्यादा हैं राजा की या भगवान की?' राजा ने मंत्री से पूरे

राज्य में एक बात का प्रचार करवाने की आज्ञा दी । वह इस प्रकार था - 'अगले श्रीरामनवमी के दिन, राजा उन सभी को भेंट देंगे जो उनके भवन में आयेंगे ।'

श्रीरामनवमी के दिन बहुत सारे लोग राजा के भवन में आये और भेंट भी ले गये । आनेवालों में वे दोनों भिखमंगें भी शामिल थे । जिसने राजा का नाम लिया था, उस भिखमंगे को राजा ने एक बड़ा कद्दू देकर कहा - 'इस कद्दू के कारण तुम्हें संपदा मिलेगी ।'

कुछ दिनों के बाद, राजा और मंत्री राज्य के सभी प्रांतों में घूम आने के लिए निकले । एक जगह पर इन्होंने उस भिखारी को देखा था जिसने राजा से कद्दू की भेंट ली । वह अब भी भीख माँग रहा था । आश्चर्य - चकित होकर राजा ने उससे प्रश्न किया - 'मुझसे कद्दू लेने के बावजूद तुम भीख क्यों माँग रहे हो?' भिखमंगे ने जवाब दिया - 'महाराज! मैं ने उस कद्दू को दो रजत मुद्राओं के लिए बेच दिया । उससे मैं कितने ही दिनों के लिए खा सकता हूँ! इसलिए मैं भीख माँग रहा हूँ ।' राजा ने कहा - 'हे मूर्ख! मैं ने कद्दू में स्वर्ण आभूषण तथा मोतियों को भरकर गुप्त रूप से दिया था । अगर तुमने उसे काटकर देखा होता, तो आज तक तुम धनवान बन गए होते ।'

राजा तथा मंत्री राज्य में घूमने के बाद जब वापस लौट रहे थे, तब उस भिखारी को देखा था जो भगवान का नाम लेकर भीख माँग रहा था । वह तख्ते पर बैठकर मस्ती में था । उसे कचहरी में प्रस्तुत किया गया था । राजा ने उससे पूछा - 'तुम कम समय में इतना धनवान कैसे बन गये?' उत्तर देते हुए भिखारी ने कहा - 'हे महाराज! यह सब भगवान श्रीरामचंद्र मूर्ति की कृपा से हुआ है । मेरे पिताजी के देहांत पर मुझे एक ब्राह्मण को भोजन खिलाना था । उसके लिए मैं ने एक भिखारी से कद्दू खरीदी थी ।

जब मैं ने उसे काटा, तो मैं ने स्वर्ण मुद्राओं, तथा मोतियों को उसके अंदर भरा पाया । मैंने उनको बैचा और बहुत बडी रकम पायी ।'

तभी राजा को अहसास हुआ कि भगवान की कृपा से ही कोई भी व्यक्ति इस संसार में धनवान बनता है ।

८. कश्मीरी दुशाला

एकदा समय में, विजयनगर राज्य में चोक्कलिंगम् शासन चला रहे थे । एक दिन वे अपने मंत्रियों के साथ गणेश एवं पार्वती देवी की पूजा पूरा करके राजमंदिर वापस लौट रहे थे । मार्ग में उन्होंने 'तायुमानवर' नामक एक तपस्वी को एक पेड के नीचे तपस्या करते हुए देखा । वहाँ ठण्ड पड रही थी और तपस्वी काँप रहा था । तब राजा ने अपने सेवकों से एक अच्छा कश्मीरी दुशाला, तपस्वी को भेंट के निमित्त ले आने की आज्ञा दी । आज्ञा के अनुसार सेवक ने एक मूल्यवान दुशाला खरीदकर लाया । उस दुशाला को राजा ने तपस्वी को भेंट दिया । राजा बाद में अपने राचमंदिर में लौट गया ।

तपस्या पूरा करने के उपरांत, वह भिक्षाटन के लिए निकलता था । हर दिन की भांति उस दिन को भी वह भीख माँगने निकला । मार्ग में उसने एक निर्धन लडकी को ठण्ड के मारे थर - थर कांपते हुए देखा । तपस्वी ने उस लडकी को अपने पास बुलाया । वहाँ की प्रजा ने साधु को मना करते हुए कहा - 'हे स्वामीजी! उस लडकी को मत छुओ । वह अछूता है । लोगों ने उसे आप तक जाने के लिए भी मना किया है ।'

स्वामीजी ने उनकी एक नहीं मानी । उन्होंने लडकी को पास बुलाया और लडकी आई भी । तपस्वी, उस लडकी को दुशाला देकर, उसे नमन कर, वहाँ से चला गया । राजा का गुप्तचर इस पूरे प्रसंग को देख रहा था । उसने राजा के पास जाकर कहा - 'हे राजन्! आपने जिस अनमोल

दुशाला उस तपस्वी को दिया था, उसे तपस्वी ने एक अछूता को दे दिया। लोगों ने साधु को बहुत मना किया था, लेकिन उसने किसी की नहीं सुनी थी।' राजा को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने कहा - 'मैं ने बडे गौरव के साथ उस तपस्वी को दुशाला दिया था। उस भेंट को वह ऐर - गैर अछूता को कैसे दे सकता है? मैं उस तपस्वी से जवाब चाहता हूँ। उसे तुरंत कचहरी में लिवा लाओ।'

स्वामी जी कचहरी में आये। राजा ने उससे पूछा - 'मैं यह जानना चाहता हूँ कि जो दुशाला मैं ने आप को सम्मानपूर्वक भेंट दिया, उसे, एक अछूता को देकर मेरा अपमान क्यों किया?' तपस्वी ने उत्तर दिया - 'हे राजन्! मैं ने अपने से उसे ज्यादा महान मानकर उस लडकी को भेंट दिया। एक भक्त होकर, क्या आप इतना भी जान नहीं पाये?' आश्चर्यचकित होकर राजा ने तपस्वी से प्रश्न किया - 'एक अछूता महान कैसे मानी जाती है?' उत्तर में तपस्वी ने ऐसा कहा - 'हे राजन्! मेरी एक बात सुनो। भगवान और जगज्जननी हर एक के हृदय में वास करते हैं। वह अछूता स्वयं जगज्जननी थी जो मेरी परीक्षा लेने आई थी। मैं हर एक के हृदय में भगवती का वास देखता हूँ। उस लडकी को भेंट में दे दी।' आप अपने आप को सौभाग्यशाली समझना चाहिए क्योंकि आपके द्वारा दिया गया दुशाला स्वयं जगज्जननी तक पहुँच गई।'

यह सुनकर राजा तथा रानी ने उस तपस्वी के सामने घुटने टेक दिये और कहा - 'हमारी अविद्या के लिए हम क्षमा चाहते हैं। हमने आपके सुकर्म को जान लिया।'

9. सर्वोत्तम दान

कमलम्मा नामक एक विधवा स्त्री, नागपुरा नामक एक गाँव में रहा करती थी। उसकी एक पुत्री थी कन्नम्मा।

एक बार नागपुरा में अकाल पड़ा था। गाँव में अन्न का घाटा पड गया था। कमलम्मा वैसे ही गरीब थी, ऊपर से अकाल की पीडा और सता रही थी। उसने एक दिन आँखों में आँसू भरकर अपनी बेटी से कहा - 'बेटी! मेरी दुर्भाग्य को देखो, मैं तुम्हें खाना भी दे नहीं पा रही हूँ, तुम बहुत शुष्क दिखाई दे रही हो।' माँ पर तरस खाकर बेटी ने उससे कहा - 'माँ! मुझे तो तुम्हारे बारे में चिन्ता है। तुमने तो कई दिनों से एक कौर का खाना भी नहीं खाया। मैं बाहर जाकर किसी से माँगकर थोडा खाना लेकर आऊँगी।' ऐसा कहकर कन्नम्मा घर से बाहर निकल पडी। घर - घर जाकर वह ऐसा माँगने लगी - 'हे माँ! बहुत दिनों से हमने खाना नहीं खाया। 'बचा -खुचा खाना हमें दो हम भूखें हैं, हम खा लेंगे।'

गाँव के सभी घरों की यही हालत थी और इसलिए किसी ने कुछ नहीं दिया। दीन - दुःखी होकर कन्नम्मा घर का रास्ता मोलने लगी। एक को किसी पेड के नीचे रोटी पकाते हुए देखा। कन्नम्मा ने उसके पास जाकर पूछा - 'हम भूखों मर रहे हैं। कृपया रोटी का एक टुकडा खाने को दो। बूढी ने रोटी का एक टुकडा कन्नम्मा को दिया। कन्नम्मा ने बूढी से कहा - 'हे माँ! मेरी माँ भी एक हफ्ते से भूखी हैं, अगर एक और रोटी मुझे देंगी तो आपकी बेड़ी कृपा हम पर होगी।' बूढी ने उसे रोटी का एक और टुकड़ा दिया। जब वह रोटी के साथ आनंदपूर्वक घर वापस लौट रही थी, तब उसने एक भूखे कुत्ते को खाना ढूँढ़ते हुए देखा। कन्नम्मा मन ही मन सोचने लगी - 'यह कुत्ता मेरी जैसी भीख माँग नहीं सकता। वह केवल लोगों की ओर देखता रह जाता है। कन्नम्मा ने रोटी का एक टूकडा उस भूखे कुत्ते को खिला दिया। कुत्ता रोटी खाकर चला गया। घर लौटने पर कमलम्मा ने बेटी से पूछा कि वह कुछ खाना समेट पायी कि नहीं। कन्नम्मा ने सारा किस्सा सुनाया। तब माँ भी कन्नम्मा के किये पर बहुत खश हुई। माँ ने बेटी से कहा - 'तुमने जो कुछ भी किया,

अच्छा किया, मूक प्राणियों के प्रति उदारता रखना उत्तम गुण है । आओ बेटी, दोनों मिलकर बचे टुकडे को बाँटकर खायेंगे ।'

तभी एक लडकी भीख माँगती हुई कहने लगी - 'माँ! मैं भूख के कारण मर रही हूँ, कुछ खाने को दो!' कमलम्मा ने कहा - 'मैं उस लड़की को रोटी का मेरा टुकडा दूँगी,' ऐसा कहते हुए उसने रोटी उस लड़की को दे दिया । कन्नम्मा ने तुरंत अपनी माँ से ऐसा कहा - 'केवल एक टुकडे से उसकी भूख कैसे मिटेगी? मैं भी अपना टुकडा दे देती हूँ।' दोनों टुकडों कोलेकर लडकी चली गई । कमलम्मा और कन्नम्मा, दोनों अशक्त होकर सो गये । कमलम्मा के स्वप्न में भगवती माँ का दर्शन हुआ । माँ ने कमलम्मा से कहा - 'हे कमलम्मा! तुम और तुम्हारी बेटी, दोनों भूखे थे, इसके बावजूद तुम दोनों ने ही निस्वार्थ भाव से कुत्ते और लड़की को रोटी खिलाई । वास्तव में तुम लोगों की परीक्षा लेने मैं ही कुत्ता और लड़की के रुप में आई । तुम दोनों ने जो दानशीलता दिखाई, वह प्रशंसनीय है । तुम लोगों का जीवन, भविष्य में काफी संपदा तथा स्वास्थ्य से पनपेगा ।

जब कमलम्मा की नींद खुली, तो उसने पाया कि उसकी झोंपड़ी बडे भवन में बदल गयी, उस गाँव में हो रही थी, अकाल दूर हो गई तथा गाँव के सभी के सभी लोग सुखी जीवन बिता रहे हैं ।

10. भक्तों के लिए सेवा

हयन वुडि नामक एक गाँव में मारन नामक एक शिव भक्त रहा करता था । भगवान शिव के वे अनन्य भक्त थे । उसके पास जितने भी भक्त आते वे सबको खाना खिलाते थे ।

वह खाना खिलाते समय सच्चे शिव भक्त तथा शिव के नाम पर ढोंग करने वालों में कोई भेद नहीं रखता था । एक दिन मारन के घर

बहुत सारे भक्त एक साथ आये जो अपने आपको शिव भक्त कहकर 'ओम नमःशिवाय' का जाप कर रहे थे । मारन ने उन सबको स्नान करके अतिथि बनने की प्रार्थना की ।

इससे पहले उसने अपनी सारी संपत्ति शिवभक्तों को खिला - खिलाकर खर्च कर दिया था । उसने अपने सेवकों से ऐसा कहा था - 'मेरे पास अब पैसा नहीं है । मैं दरिद्र बन गया हूँ । मैं आपको पैसा दे नहीं सकता । आप सभी मेरे यहाँ काम करना बंद कर दो ।'

वह लगातार शिव भक्तों को खिलाता गया । उसने अपनी पत्नी के सारे आभूषण बेच डाले, रसोई के सारे बर्तन बेच डाले और उसकी जगह मिट्टी के बर्तन इस्तेमाल करने लगा ।

एक दिन मूसलादार वर्षा हो रही थी और भगवान शिव अपने शिष्य की परीक्षा लेना चाह रहा था ।

एक भक्त मारन के घर भीगकर आया । उसने मारन को घर आकर कहने लगा - 'मैं बहुत भूखा हूँ । मैं भीग गया हूँ । मुझे लगा कि मुझे आपके घर में निस्संदेहपूर्वक खाना मिलेगा ।

मारन ने अतिथि को घर में बुलाया । मारन की पत्नी ने मारन से कहा कि खाना बनाने के लिए धान्य बिलकुल ही नहीं है । मारन ने पत्नी से कहा 'आज मैंने चावल के बीज बोये हैं, देखकर आऊँगा कि धान उग आयें हैं कि नहीं, तुम चिन्ता मत करो ।' मारन ने खेत से धान ला दिये । फिर घर में चूल्हा जलाने के लिए लकड़ी नहीं था । मारन ने पत्नी से कहा - 'तुम धान कूटकर चावल बनाओ । मैं घर के छत से कुछ लकड़ी खींच निकालकर तुम्हें चूल्हा जलाने के लिए दूँगा । मारन की पत्नी ने खाना बनाया । मारन अतिथि को बुलाने के लिए गया, लेकिन अतिथि वहाँ नहीं था । बाहर वर्षा हो रही थी, उसी बारिश में अतिथि को ढूँढते

मारन घर से बाहर निकला । मारन ने सोचा - 'अतिथि ने हमारी कमजोरी एवं दरिद्रता को पहचान लिया होगा और इसलिए निकल गया होगा ।'

मारन को अतिथि दिखाई नहीं दिया । वह निराश और चिन्ताग्रस्त होकर घर वापस लौटा । मारन और उसकी पत्नी बिना खाये चिन्तामग्न हो बैठ गये । तभी अचानक भगवान शिव उनके सामने प्रत्यक्ष हुए । उन्होंने कहा - 'मैं ही वृद्ध के रूप में आपकी परीक्षा लेने आया था । मेरे भक्तों के प्रति तुम्हारी जो श्रद्धा है, वह प्रशंसनीय है । तुम्हारे घर में मेरे असंख्य भक्तों को खिलाने के लिए आवश्यकतानुरूप धान उपलब्ध रहेगा । तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के प्रति मेरे आशीर्वचन सदा रहेंगे ।

मारन और उसकी पत्नी ने 'ओम् नमः शिवाय, ओम् नमः शिवाय' का उच्चारण करते हुए भगवान शिव को अपने साष्टांग नमस्कार प्रस्तुत किए ।

11. सिंगारु महर्षि

लंकाधीश, असुरपति रावणासुर को मारने के बाद भगवान श्रीरामचंद्रमूर्ति लंका से अयोध्या वापिस लौटकर आये । वशिष्ठ महर्षि ने श्रीराम को सुझाव दिया कि वे किसी व्यक्ति को तिल का दान दें, क्योंकि उन्होंने रावण के साथ युद्ध में सैकडों व्यक्तियों को मारा था । तिल दान में लेने वालों को चूँकि दान के परिणामों को झेलना पडेगा, इसलिए कोई भी व्यक्ति तिल को दान के रूप में लेने को तैयार नहीं था । वशिष्ठ महर्षि ने तिल के साथ सोने को भी दान में देने के लिए कहा ।

ऐसे भेंट को लेने के लिए राज्य में घोषणा की गई । सिंगारु नामक एक निर्धन महर्षि अयोध्या में रहता था । सिंगारु की पत्नी ने घोषणा को सुनकर अपने पति से भेंट स्वीकारने का सुझाव दिया और कहा - 'हम

बहुत गरीब हैं । उस भेंट को लेने पर जो परिणाम मिलते हैं, वे आपके आध्यात्मिक बल के सामने टिक नहीं पायेंगे । लेकिन सिंगारु महर्षि ने ऐसा कहा - 'तिल का दान में लेने से मेरी आध्यात्मिक शक्ति क्षीण पड जाएगी और श्रीराम के सारे पाप मुझ पर आ जायेंगे । सोने के बदल मेरे द्वारा संचित पूण्य सभी दूर हो जायेंगे ।'

महर्षि की पत्नी ने कहा - 'दान लेते समय आप देवाधिदेव के चेहरे की ओर देखो, आपके सारे पाप धुल जायेंगे ।' सिंगारु ने इस सुझाव को स्वीकारा । वह दान लेने राजमंदिर की ओर कदम बढाया । मार्ग में महर्षि ऐसा सोचने लगे - 'अगर मैं श्रीराम के चेहरे को नहीं देखूँगा, तो मेरे पाप नहीं धुलेंगे । अगर ऐसा हुआ तो श्रीराम अपने पापों से कैसे मुक्त होंगे? श्रीराम को निश्चित रूप से अपने पापों से च्युत होना ही पडेगा । इसलिए महर्षि ने वशिष्ठ से कहा कि वे भेंट लेते समय श्रीराम और सिंगारु के बीच एक परदा रखें ।'

महर्षि तिल तथा स्वर्ण के साथ घर वापिस लौटकर आये । उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि मैं ने श्रीराम के चेहरे को नहीं देखा और इसलिए आध्यात्मिक शक्ति नहीं पायी । उसकी पत्नी ने महर्षि से कहा - 'हे पतिदेव! आप चिन्ता मत करो! जिस दिन को राम का पट्टाभिषेक होगा, उस दिन को श्रीराम रथारूढ़ होकर नगर में शोभा यात्रा के लिए निकलेगा । जब वह रथ हमारे कुटीर के पास आयेगा, तब आप उनके निकट जाकर दर्शन लेना । उनके चेहरे को देखते ही आपके सारे पाप धुल जायेंगे ।'

पट्टाभिषेक का दिन था । श्रीराम द्वारा आरुढित रथ सिंगारु के कुटीर के समीप पहुँचा । महर्षि ने श्रीराम का दर्शन लिया । रथ के सामने साष्टांग प्रणाम किया । श्रीराम स्वयं रथ से उतरकर महर्षि से कहा - 'महर्षि! आप जिस आध्यात्मिक शक्ति को खो बैठे और जिसके बारे में

चिन्ता कर रहे हैं, वह सब दःख दूर हो गया । अब से तुमने सारी आध्यात्मिक शक्ति पुनः प्राप्त कर लिया ।'

12.श्रीभानुदास

पंडरपुर में भानुदास नामक एक वस्त्र विक्रेता रहता था । वह भक्त था, साथ - ही - साथ बड़ा ईमान्दार व्यापारी भी था । जब भी कोई खरीदार / ग्राहक उसके दूकान पर आता, तब वह उनसे यह कहता था - 'देखिए! इस साडी की बुनावट बहुत अच्छी है लेकिन यह पुरानी है । इसलिए मैं आपको कम दाम पर दूँगा ।' ऐसा बोलने वाले इस विक्रेता से बाकी वस्त्र विक्रेता बडबडाने लगे - 'वह निश्चित रूप से ईमांदार तथा सच्चा आदमी है । लेकिन वह हम जैसे वस्त्र विक्रेताओं के लिए अच्छा नहीं है । ऐसे व्यक्ति को इस व्यवसाय में आना ही नहीं था ।'

उस गाँव के सभी विक्रेताओं ने उस व्यक्ति से मिलकर इसके बारे में चर्चा करना चाहते थे । बाद में सभी मिले और उनसे ऐसा कहा - 'अगर आप इस प्रकार कम दाम में कपडे बेचोगो तो हम लोगों को अपने दूकान पर ताला' लगाने पडेंगे । कोई भी ग्राहक हमारे दूकानों पर नहीं आ रहे हैं । अगर आप अपने तरीके को बदल नहीं सकते, तो अपने दूकान को बंद कर लो ।'

भानुदास ने उनसे कहा - 'मुझे माफ कीजिए । जीवन में पैसा ही सब कुछ नहीं होता । हमको ईमान्दारी से जीना होगा, हमको भगवान की प्रार्थना करनी चाहिए ।' एक दिन भानुदास, को मंदिर में भजन करने जाना था । वह अपना दूकान बंद करना नहीं चाहता था । उसने अपने सहविक्रेताओं से कहा - 'मैं दूकान बंद करना नहीं चाहता, आप इसकी देखभाल करो ।' पडोसियों ने नहीं माना । भानुदास ने सोचा - 'भगवान ही इस दूकान की देख - रेख करेगा ।' भानुदास भजन करने मंदिर चला

गया । यह सहविक्रेताओं के लिए अच्छा अवसर था । सहविक्रेताओं ने भानुदास की अनुपस्थिति में उसके दूकान के सारे कपडों को ले जाकर एक पुराने कुँए में फेंक दिया । कपडों को फेंकने के बाद जब वे वापिस अपनी दूकानों को लौटे, तब उन्होंने अपने दूकानों को खाली - खाली पाया । उनकी दूकानों से चोर कपड़े लूटकर ले गये और जो भी उनके मार्ग में आये, उन सबको उन्होंने मारा - पीटा ।

बाद में सहविक्रेताओं ने अपने अपराध के लिए पछताया । उन्होंने ऐसा कहा - 'भगवान ने हमें अच्छी सजा दी है । जो बोया सो पाया ।' सभी मिलकर भानुदास के पास जाकर उनसे माफी माँगी । तब भानुदास ने उनसे ऐसा कहा - 'आपने पछताया । आप पांडुरंग भगवान की प्रार्थना करो । वे आपको क्षमा करेंगे । भगवान दयावान है । आप सभी फिर से संपन्न बनोगे । पुनः अपना व्यापार प्रारंभ करो ।'

13. शबरी (श्रीराम की भक्तिन)

शबरी, भगवान श्रीरामचंद्र की श्रेष्ठ भक्तिन थी । उसके पिता क्षत्रिय थे और माँ शिकारिन थी । उस का विवाह जब हुआ, तब उसके माँ - पिताजी ने सैकडों जानवरों को मारकर बड़ी दावत देना चाहा । लेकिन शबरी को मासूम जानवरों को मारना पसंद नहीं था । वह विवाह करना ही पसंद नहीं कर रही थी । भक्ति को जीवनाधार बनाकर भक्तिन के रूप में आध्यात्मिक क्षेत्र में ही जीकर अविवाहिता बनकर जीना चाह रही थी । वह ऐसी मानसिकता के नेपथ्य में अपने माँ-पिताजी को छोडकर चली । वह मंतग महर्षि के आश्रम में जाकर रहने लगी । वहाँ स्वच्छ, निर्मल जीवन बिताने लगी । उसने महर्षि से पूछा : 'जीवन जीने का कौन - सा साधन सीधा व सही है?' उसके उत्तर में महर्षि से कहा - 'प्रियपुत्री! जीवन का परमलक्ष्य भगवान को जानना है । सत्संगति

तथा ऋषि - मुनियों की सेवा ही भगवान को पहचानने का मार्ग है । निरंतन ध्यान में रहो । ध्यान से मस्तिष्क निर्मल बनेगा ।'

मतंग द्वारा एक मिम्न जाति वाली को शरण तथा शिक्षा मिलना आश्रमवासियों को पसंद नहीं आया । उन्होंने इन दोनों को नजरंदाज करना शुरु किया । शबरी ग्लानि से पीडित हुई । वह मुनि से कहने लगी - 'हे मुनि! मैं अन्त्यजा हूँ । आपके यहाँ शरण लेना ही मेरा अपराध है ।' मुनि ने शबरी को अपने आश्रम से निकल जाने की आज्ञा दी । शबरी निकल गई तथा एक झोंपडी में रहने लगी । एक दिन वह स्नान करने के लिए नदी के कूल पर जा रही थी । एक ब्राह्मण नदी में स्नान करके उसी मार्ग में अपने घर वापिस लौट रहा था । तभी शबरी के साडी की पल्लू उस ब्राह्मण से लगी । ब्राह्मण पुनः स्नान करने नदी मे गया । एक बार गोता लगाते ही, उसके शरीर पर कीडे रेंगने लगे तथा नदी का पानी लाल हो गया । उसने एक भक्तिन का अपमान किया और ये सभी उसी के परिणाम सिद्ध हुए । पहले इन परिणामों को देखकर चकित हुआ, लेकिन उसके बाद ही उसे उसका कारण मिला । उसने पछताकर, शबरी से माफी माँगी ।

कई वर्ष बीत गये । श्रीरामचंद्रमूर्ति, कैकेई की माँग के कारण दण्डकारण्य में विचरण कर रहे थे । उन्हें इससे पहले के प्रण की याद आई । श्रीरामचंद्रमूर्ति, शबरी के कुटीर में पधारे । श्रीराम को शबरी ने स्वादिष्ट फल खाने को दिये । राम को देने से पहले वह हर फल को चखचखकर निर्धारित करने लगी कि वे मीठे हैं या नहीं । जूठे होने के बावजूद श्रीरामचंद्र ने उनको बडे चाव से खाया । अन्त्यजा के प्रति उनका वात्सल्य अपूर्व था (उस औरत की भक्ति ही इसका कारण था) ।

एक दिन सभी मुनि एक साथ रामचंद्र से मिले । उन्होंने राम से पूछा - 'हे भगवान! नदी का पानी लाल रंग में क्यों बदल गया था? एकदा समय वह बहुत स्वच्छ था ।'

रामचंद्र के साथ वनवास में रहनेवाले लक्ष्मण ने उनको ऐसा जवाब दिया - 'क्योंकि ब्राह्मणों ने मंतग महर्षि का बहिष्कार किया तथा हमारी भक्तिन का अपमान किया ।' तब मुनियों ने प्रश्न किया - 'क्या हम उस रक्तवर्ण नदी के पानी को स्वच्छ पानी में बदल नदीं सकते?' लक्ष्मण ने उत्तर दिया - 'अगर शबरी उस नदी में स्नान करेगी, तब गंदा पानी स्वच्छ बन जायेगा ।'

तब मुनि ने शबरी से प्रार्थना की कि वह आकर नदी के पानी को स्वच्छ बनावें । शबरी ने उनकी प्रार्थना सुनी, स्नान किया । पानी पूरा स्वच्छ तथा निर्मल बना ।

सभी ने शबरी के प्रति धन्यवाद प्रकट किया ।

14. भक्त कनकदास

कनकदास, श्रेष्ठ भक्त एवं कवि थे । उनका जन्म एक शिकारी के परिवार में हुआ था । कर्नाटक के धारवाड जिले के पाड़ा नामक गाँव में वे रहते थे । एक दिन उन्होंने एक चट्टान से टक्कर खाई । उस चट्टान के नीचे बहुत सारी स्वर्ण मुद्रायें जमे पडे थे । उन मुद्राओं को उन्होंने अपने लिए न रखकर, निर्धन लोगों में बाँट दिया । वे एक महान गुरु के शिष्य बने । एक दिन गुरु ने अपने सभी शिष्यों को अपने पास बुलाया । गुरु ने सभी को एक केला देते हुए कहा - 'जहाँ पर कोई आपको नहीं देखता, वहाँ पर इस केले को खाइए ।' एक शिष्य पेड के पीछे छिपकर खाने लगा, दूसरा एक मकान के पीछे गया, इस प्रकार सभी शिष्यों ने छिप छिपकर खाया । लेकिन कनकदास बिना कहीं हिले, केले को अपने पास रखकर वहीं रह गये । गुरु ने शिष्य से पूछा - 'कनकदास! तुमने केले को क्यों नहीं खाया?' कनकदास ने जवाब दिया - 'हे गुरुवर! जहाँ भी मैं जाता हूँ, भगवान को मैं वहाँ पाता हूँ । ऐसा कोई जगह नहीं है

जहाँ भगवान विद्यमान नहीं हो। इसलिए आपके वचन का मैं पालन नहीं कर पाया।' गुरुवर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा - 'हे कनकदास! तुम तो बहुत बडे भक्त हो। तुम्हारे जैसे शिष्य को पाकर मैं गर्व मेहसूस कर रहा हूँ।'

उडिपि, एक यशप्राप्त तीर्थस्थान था। आज भी यह गाँव है और वहाँ भगवान कृष्ण का मंदिर है। एकदा समय, एक बड़ा उत्सव उस मंदिर में मनाया गया था। सैकडों भक्तगण उस में भाग लेने आये। कनकदास भी उस उत्सव में भाग लेकर अनेकानेक भक्ति के गीत गुनगुनाने लगा था।

उस मंदिर के पुजारियों ने कनकदास को मंदिर के अंदर जाने से यह कहते हुए रोका कि - 'तुम निम्न जाति के व्यक्ति हो। कैसी जुर्रत है तेरी इस मंदिर में आने की। बाहर निकलो।'

कनकदास टस से नस नहीं हुआ। वहीं खडे होकर एक अद्भुत भक्ति परक गीत आलापने लगा। एक पुजारी ने उस पर हाथ उठाकर, कनकदास को मंदिर के बाहर कर दिया। कनकदास ने मंदिर की प्रदक्षिणा की। वे भगवान की प्रार्थना करते हुए मंदिर के पीछे के दीवार पर झांकते खडे हो गये। वे कहने लगे - 'हे कृष्णा! माधव! मैं ने कौन - सा अपराध किया कि मुझे मंदिर में तुम्हारा दर्शन नहीं मिला!'

तुरंत एक बड़ी आवाज के साथ वह दीवार गिर पडी और कनकदास को अंदर जाने के लिए मार्ग दिखाई। कृष्ण की मूर्ति कनकदास की ओर मुड गई। कनकदास ने कृष्ण भगवान का अति निकट से दर्शन किया। कनकदास पर भगवान की कृपा वृष्टि हुई। आज भी उडिपि मंदिर में वह गलियारा 'कनकदास गलियारा' नाम से देखा जा सकता है।

कनकदास ने बहुतेरे भक्तिपरक गीतों की रचना की । इनको 'हरिभक्त सारा' कहते हैं । आज भी इनके गीत, संगीतज्ञों से गाये जाते हैं ।

15. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

एक बार वारणासी में दशहरे के उत्सव मनाये जा रहे थे । स्नान घाटों पर सैकड़ों भक्तगण गंगा के कूल पर तथा गंगा नदी पर तैरनेवाले नाँवों पर खडे होकर उत्सव को देख रहे थे ।

एक नाँव जो सुसज्जित था, उस में पेशवा भाजी राव II, उसके भाई तथा सभासद, मोराबंद और तांद्दे आदि राजपरिवार के सदस्य इस उत्सव को देख रहे थे । उसी नाँव में मोराबंद की सात वर्षीय बेटी मनु भी थी। अचानक एक मगरमच्छ पानी से बाहर उच्छलता दिखाई दिया । लोग चिल्लाने लगे - 'मगरमच्छ, मगरमच्छ!' वह उस ओर तैर रहा था जिस ओर कुछ बालक तैर रहे थे । उनमें से एक ने चिल्लाया - 'मगरमच्छ, मगरमच्छ!' एक बालक को छोडकर बाकी सभी तैरते हुए घाट पर पहुँच गये, नाँव पर जो व्यक्ति थे उन्होंने तथा सिपाहियों ने भी चिल्लाया - 'मगरमच्छ, मगरमच्छ!' मनु ने भी उस बालक को देखा । एक मगरमच्छ उस का पीछा कर रहा था । अचानक उसके पिताजी तथा परिवार के सदस्यों को आश्चर्य में डालते हुए मनु ने नदी में कूद दिया । मनु ने उस बालक को पकडा एवं निकट के नाँव में ले आकर लिटा दिया । उसके पिता ने उसको बाहों में बाँध लिया और कहा - 'मेरी प्यारी बेटी! तुमने अपने जान को खतरे में डालकर बालक को बचाया । तुम्हारे मन में दूसरों के प्रति करुणा है और साथ ही साथ तुम काफी शक्तिशाली लडकी हो ।'

यह बच्ची वही थी जो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई थी जिसने अंग्रेजों से लडा था और हमारे भारत देश को स्वतंत्रता दिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया था ।

16.जयदेव तथा अष्टपदी

'गीतगोविन्दम्' के रचनाकार जयदेव का जन्म पूरी के आसपास एक छोटे से ग्राम में हुआ था । वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे । वे बहुचर्चित कवि भी थे । उन्होंने 'गीत गोविन्द' तथा 'अष्टपदी' नामक ग्रंथ की रचना की थी ।

पद्मावती उनकी पट्टरानी थी । वह अपने पति के संग बड़ी सम्मान के साथ व्यवहार करती थी । अट्ठारह अष्टपदियों को पूरा करने के बाद, वे उन्नीसवाँ अष्टपदी प्रारंभ करने वाले थे । इस छंद में उनको भगवान श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया राधा के श्रृंगार क्रीडा का वर्णन करना था । उन्होंने इसे अधूरा छोडकर नहाने के लिए चले गए । नदी में स्नान करके जयदेव घर वापस लौटे ।

आधा छोडे छंद को पूरा करने के लिए जयदेव ने उन्नीसवें अष्टपदी को लिया । आश्चर्यचकित होकर जयदेव ने देखा कि उनका अष्टपदी भर दिया गया । कवि ने अपनी पत्नी पद्मावती से पूछा - 'पद्मा! इस छंद को किसने भरा?' 'मुझे कुछ सूझ नहीं रहा है ।' पत्नी ने जवाब दिया । जयदेव पहचान गए कि श्रीकृष्ण ने स्वयं ही इस छंद को पूरा किया । जयदेव ने पत्नी से कहा - 'तुमने मुझसे कहा था मैं ने बीच में आकर तुमसे पांडुलिपि माँगकर छंद को लिखा था । लेकिन मैं बीच में आया ही नहीं था । श्रीकृष्ण स्वयं मेरे भेष में आकर इसे पूरा किया । तुम बड़ी भाग्यशाली हो क्योंकि तुम्हें श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हुआ ।'

एक बार राजा के एक रिश्तेदार का देहांत हुआ । उसकी पत्नी ने पति की चिता पर बैठकर सती बनने का निर्णय लिया था । राजा तथा पूरा शहर इस घटना को देखने के लिए श्मशान में एकत्रित हुए । उसी दिन को पद्मावती, रानी से जा मिली थी । रानी ने पद्मावती से पूछा -

'तुम सती की उस घटना को देखने के लिए नहीं आओगी?' तब पद्मावती ने जवाब दिया - 'नहीं महारानी! इस सती में क्या ही विशेषता है? पति की मृत्यु के तुरंत पत्नी का अगर देहांत हो, तब उसकी मान्यता है । सती बनना कोई मायना नहीं रखता ।' रानी ने कहा - 'तुम जो कहती हो, उसे मैं स्वीकार नहीं सकती ।' लेकिन पद्मावती ने कहा - 'पति के देहांत के तुरंत पत्नी की मृत्यु होना उसका संकेत करता है कि पत्नी - पति से प्रेम करती है ।' रानी ने तब कहा - 'ठीक है, मैं तुम्हारे इन वचनों की परीक्षा किसी और दिन को लूँगी ।'

एक बार जयदेव, राजा के साथ शिकार पर निकले । उस समय पद्मावती रानी के साथ थी । रानी ने एक सिपाही से रहस्यपूर्वक ऐसा कहा - 'जब मैं पद्मावती के साथ बैठकर बातचीत करती रहती हूँ, तब तुमको मेरे पास आकर यह कहना होगा कि एक शेर ने जंगल में जयदेव को मार डाला ।' रानी की आज्ञा का पालन सिपाही ने किया । जिस पल को पद्मावती ने जयदेव की मृत्यु वार्ता सुनी, उसी पल नीचे गिर पड़ी तथा मर गई । रानी बहुत तनाव में आ गई । उसने इस पूरे बृत्तांत को जंगल में रहनेवाले राजा तथा जयदेव को सुनाया । तब राजा इतने शर्मिंदा हुए कि वे स्वयं आत्महत्या करने पर तुल गए । लेकिन जयदेव ने उनको रोका । जयदेव ने भगवान द्वारा स्वीयरचित उन्नीसवें अष्टपदी को अपनी पत्नी के देहावशेष के सामने गाने लगे । आश्चर्य! पद्मावती ऐसे उठकर बैठ गई मानों वह गहरी नींद से उठ बैठी हो । तब रानी और राजा ने जयदेव को साष्टांग प्रणाम समर्पित करके क्षमा माँगी ।'

जयदेव ने राजा तथा रानी से ऐसा कहा - 'यह सब भगवान श्रीकृष्ण की लीला है । भगवान आपकी भला करे ।'

17. एकनाथ और कोढ़ी

एकनाथ नामक एक भक्त को अपने पिताजी की अंत्येष्टि करना था। परंपरा के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन खिलाना था। लेकिन, एकनाथ ने गरीब व निम्न जात के लोगों को खाने पर बुलाया। उसने इन सबको बड़ा भोज दिया। जब ब्राह्मणों को इसका समाचार मिला, तो सभी एकनाथ के घर जाकर उससे ऐसा पूछा - 'अंत्येष्टि के दिन केवल ब्राह्मणों को भोजन खिलाना था, लेकिन तुमने उस परंपरा को तोड़ दिया। इस के लिए तुमको पाप परिहारार्थ कुछ संस्कारों को निभाना होगा। एकनाथ ने नदी में नहाकर प्रायश्चित धार्मिक संस्कार को संपन्न किया। जब सभी अनुष्ठान पूरा करके वापिस लौट रहे थे, तब एक कोढ़ रोगी उनके सामने प्रस्तुत हुआ और एकनाथ से ऐसा कहा - 'भैया! मैं निकट के गाँव से आया हूँ। मैं शिवजी का भक्त हूँ। मैं उनकी नित्य पूजा करता हूँ। कल रात को वे मुझे स्वप्न में दिखाई दिए। उन्होंने मुझे आपसे मिलने के लिए कहा। उन्होंने मुझसे यह भी कहा था कि आपने गरीब व निम्नवर्ग के लोगों को भोजन खिलाकर बहुत सारा पुण्य कमाया है। अगर आप थोडा - सा पुण्य मुझे प्रदान करोगे तो मेरा यह रोग दूर हो जायेगा।'

एकनाथ ने निस्वार्थ रूप से जितना चाहिए था, उतना सहर्ष बाँटने को तैयार हो गया। उसने नदी का पानी थोड़ा लेकर कोढ़ी पर छिडका।

आश्चर्य! कोढ़ी को रोग से मुक्ति मिली। ब्राह्मणों को एकनाथ का महत्व मालूम पड़ा और उनसे क्षमा याचना की।

18. श्रम का फल मीठा

एक बार, एक ब्राह्मण अपने राजा के पास जाकर, अपनी बेटी की विवाह के लिए पैसों की मदद माँगी। राजा ने कोषाधिकारी से कहा कि

वे एक हजार स्वर्णमुद्रायें लाकर दान में दें । ब्राह्मण ने राजा से कहा - 'हे राजन्! यह धन विवाह करने के लिए पर्याप्त नहीं होंगे ।' राजा ने कोषाधिकारी से कहा कि वे ब्राह्मण को दस हजार स्वर्ण मुद्रायें दें ।

ब्राह्मण धन की माँग बढ़ाता गया । बाद में राजा ने कोषाधिकारी से कहा - 'उसके सामने कोषागार को खोलकर रखो । ब्राह्मण जितना चाहता है, उतना लेने को कहो । वे अपनी बेटी का विवाह धूम - धाम से मनायें ।' इतना करने के बावजूद ब्राह्मण संतृप्त नहीं हुआ । उसने राजा से कहा - 'हे राजन्! आपकी उदारता से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । आप जितना हमें देते हो, वह पूरी संपदा आपकी पैत्रिक संपदा है लेकिन मुझे वह पैसा चाहिए, जो आपसे कामाये गये हों, चाहे रकम जितनी भी कम क्यों न हों?' राजा ने ब्राह्मण से अगले दिन आने को कहा । राजा ने कहा - 'मैं काम करके, कमाकर आपको दूँगा ।'

राजा, भेष बदलकर काम ढूँढता हुआ बाहर निकला । राजा एक लुहार के दूकान पर गया । लुहार ने राजा से कठिन से कठिनतर काम करवाया और केवल दो ताम्र मुद्रायें दीं ।

अगले दिन ब्राह्मण राजा के पास आया । राजा ने दो ताम्र मुद्रायें ब्राह्मण को देकर कहा - 'कठोर परिश्रम करके मैं इतनी ही मुद्रायें कमा पाया ।' ब्राह्मण, तृप्त होकर, वहाँ से निकल गया । घर जाकर ब्राह्मण ने पूरा किस्सा सुनाया । पत्नी ने पति से ऐसा कहा - जब तुम्हारी इच्छा के अनुरूप मिल रहा था, तो तुमने उनको क्यों ठुकराया? तुम तो बुद्धिहीन निकले । पत्नी ने दोनों ताम्र सिक्कों को फेंक दिया ।

ब्राह्मण और उसकी पत्नी ने आश्चयपूर्वक एक दृश्य को देखा । जहाँ पर ताम्र सिक्के गिरे वहाँ दो वृक्ष उग आये जिन पर स्वर्ण मुद्रायें, वज्र, मोती तथा अमूल्य रत्न लदे हुए थे । ब्राह्मण ने अपनी बेटी का बडे

पैमाने में खर्चा करके विवाह किया। राजा, रानी तथा पूरा मंत्री मंड़ल भी उस विवाह में पधारे थे।

ब्राह्मण ने राजा से कहा - 'हे राजन्! कठोर परिश्रम से चाहे कम ही आमदनी मिले, लेकिन उसके फल बहुत मीठे होते हैं।' राजा को परिश्रम का मूल्य मालूम हुआ।

19. रघुवंश का उद्‌भव

दिलीप चक्रवर्ती निस्संतान थे। चक्रवर्ती तथा उनकी पत्नी सुदक्षिणा, वशिष्ठ महर्षि के आश्रम में जाकर वशिष्ठ महर्षि, जो सूर्यवंशीय राजाओं के गुरू थे, उनका दर्शन किया। दिलीप ने महर्षि से कहा - 'हे ऋषिवर! मेरे बाद सिंहासन को संभालने वाला कोई नहीं रहा।' तब वशिष्ठ ने दिलीप को निस्संतानवान होने का कारण इस प्रकार कहा - 'इंद्रलोक में देवेन्द्र की सहायता करने के बाद जब तुम वापिस लौट रहे थे, तब तुमने पवित्र कामधेनु की प्रदक्षिणा नहीं किया, उसको नजरंदाज करके आ गये। उनका सम्मान नहीं हुआ, तब उस धेनु क्रुद्ध हुआ तथा तुम्हें निस्संतावान हो जाने का शाप दिया। जो श्रेष्ठ होते हैं, और जब उनका मान नहीं रखा जाता है, तब कोई संतोषपूर्वक जीवन जी नहीं सकता।' दिलीप ने कहा - 'हे मुनिवर! वह अनजाने हो गया, मैं ने जान - बूझकर यह पाप नहीं किया।' वशिष्ठ ने कहा - 'हे दिलीप! अब हमारी नंदिनी अपने वत्स के साथ यहाँ आयेगी। आप दोनों यहाँ ठहरकर इस धेनु की सेवा करो। आपका पाप दूर हो जायेगा।'

दिलीप चक्रवर्ती तथा उनकी पत्नी आश्रम में रहकर नंदिनी धेनु की पूजा व सेवा की। चक्रवर्ती, धेनु के पीछे ही रहा करता था। जहाँ भी गाय जाती, उसके रक्षणार्थ स्वयं राजा भी पीछे - पीछे चलता।

एक दिन अचानक एक सिंह ने आकर उस पर झपट पडा । दिलीप ने एक सिंह को मारने के लिए तीर से निशाना लगाया । अचानक उसके हाथ अशक्त हो गये और तीर चलाना असंभव हो गया था ।

आश्चर्य की बात, सिंह मनुष्य के रूप में बोलने लगा - 'हे राजन्! आप मुझे मार नहीं पाओगे क्यों कि मैं शिव का भक्त हूँ । मैं भूखा हूँ । उसे मारकर मुझे अपनी भूख मिटाने दो ।' राजा दिलीप ने कहा - 'नहीं मृगराज! मैं इस भूभाग का राजा हूँ । यहाँ के सभी प्राणियों की रक्षा करना मेरा दायित्व है । उसे छोड़ दो और उसके बदले मुझे मार खाकर अपनी भूख मिटा लो ।'

नंदिनी गाय ने ऐसा कहा - 'हे दिलीप! मैं सिंह के भेष में आया हुआ शिव भक्त हूँ । मुझे आपकी परीक्षा लेने के लिए भेजा गया । वशिष्ठ जी की कृपा के कारण कोई मुझे तंग नही कर सकता । आपने जिस स्फूर्ति तथा सेवाभाव के साथ अपने को शिकार बनाकर मुझे बचाने का प्रयास किया, उससे मैं प्रसन्न हुआ । आपको बहुत जल्द एक लड़का पैदा होगा ।'

सुदक्षिणा ने एक बेटे को जन्म दिया । उसका नाम 'रघु' रखा गया । इसी नाम से इस वंश ने आगे कीर्ति पायी । इस वंश में ही भगवान श्रीमहाविष्णु ने श्रीरामचंद्र मूर्ति के रूप में जन्म लिया ।

20. अभिराम भट्ट

मृक्कडयूर नामक एक गाँव में अभिराम भट्ट का जन्म हुआ था । वह ब्राह्मण था । बचपन से ही उन्होंने संगीत कला में अपनी प्रतिभा दिखाई । वे जगन्माता अभिरामी के अनन्य भक्त थे । उन्होंने भौतिक जगत में अधिक श्रद्धा नहीं दिखाई । लोगों ने उसे पागल समझ रखा था ।

सुरभोज राजा उस समय, अपना शासन चला रहा था। अमावस्या की रात को एक बार वह तिरुक्कडयूर पहुँचा। वहाँ एक मंदिर में जगन्माता की पूजा में निमग्न अभिराम भट्ट को उस राजा ने देखा। राजा ने मंदिर के पुजारी से उस व्यक्ति के बारे में पूछताछ किया जो प्रार्थना में निमग्न था। तब पुजारी ने राजा से कहा - 'हे राजा! वह एक पागल व्यक्ति है। वह वेदों में विश्वास नहीं रखता। वह हरदम किसी अज्ञात देवी की प्रार्थना में लगा रहता है। राजा को उस व्यक्ति से बातचीत करने का मन हुआ। उसने भट्ट से पूछा - 'हे भट्ट! आज कौन - सा दिन है?'

भगवती अभिरामी के दिव्य तेज की ओर देखकर भट्ट ने उत्तर दिया, यथा - 'आज पूर्णिमा का दिवास है।' वास्तव में वह दिन पूर्णिमा का दिन नहीं था। जैसा हर किसी ने सोचा, उसी भाँति राजा ने भी यही मान लिया था कि भट्ट पागल व्यक्ति है। राजा के निकल जाने के बाद भट्ट ने अपनी भूल पहचान ली। उसने भगवती की प्रार्थना की - 'हे जगज्ञननी! मुझे बचा लो, मेरी भूल को सही बना दो।' उसने मंदिर में एक गड्ढा खोदी। उसमें अग्नि भी डाला। उसके बाद भट्ट ने ध्यान मुद्रा ग्रहण की। उसने भगवती माँ की प्रार्थना करना प्रारंभ किया - 'हे जगज्ञननी! अगर तुम मेरी प्रार्थना नहीं सुनोगी तो मैं इस अग्निकुंड में कूद पडूँगा। उसने ध्यान करना प्रारंभ किया। उसने एक तख्ता लगाया जो अग्निकुंड के पास झूल रहा था। उस तख्ते पर भट्ट बैठ गया। वह तख्ता एक सौ रस्सियों से बांधा हुआ था।'

अब उसने जगज्ञननी पर अनेकानेक कीर्तनों की रचना करने लगा। एक गीत की रचना के बाद एक रस्सी को काटा। उसी प्रकार एक - एक रस्सी, एक कीर्तन की रचना के तुरंत बाद काटने लगा। उसने उनासी रस्सियों को जैसे ही काटा, पश्चिम में सूरज ढलने लगा

तथा चारों ओर अंधकार छाने लगा । उस समय भट्ट को जगज्ञननी का दर्शन हुआ, उस माता का साक्षात्कार हुआ । उसके दर्शन से भाव विभोर होकर भट्ट ने ऐसा कहा - 'हे जगज्ञननी, मेरी आँखों को रोशनी प्रदान करो ।'

वह माँ की निरंतर स्तुति करता गया । भगवती ने अपने कर्णफूल को निकालकर आसमान की ओर फेंका । वह आकाश में चंद्रमा की भांति चमकने लगा । माँ अति प्रसन्न होकर भट्ट से कहने लगी - 'हे भक्त! मैं ने तुम्हारे वचनों को सत्य बना दिया । तुम निरंतर गाते जाओ ।' उस गाँव की प्रजा अत्यंत अश्चर्यचकित हुई । अमावस्या के दिन चंद्रमा का चमकना तथा पूर्णिमा के दिन का आभास दिलाना, यह सब कुछ आश्चर्य के विषय थे । सभी लोग आश्चर्यचकित होकर ऐसा कहने लगे - 'अद्‌भुत! यह तो भट्ट का चमत्कार है ।'

राजा ने स्वयं बाहर आकर इस चमत्कार को देखा । वह भट्ट के पास भागता हुआ आया । वह भट्ट के चरणों में गिर पडा । भट्ट ने 'अभिरामी अंधादि' की रचना की थी । वे संख्या में एक - सौ थे । इस रचना के लिए राजा ने भट्ट को पैसे भेंट में दिया ।

21. स्कांद पुराण

कांचीपुरम् के कुमरनकोट्टम् मंदिर में शिवाचार्य पुजारी थे । भगवान मुरुग (सुब्रह्मण्य स्वामी) के कटाक्ष से शिवाचार्य को कचेयप्पा नामक बेटा पैदा हुआ । बचपन से ही वह तमिल व संस्कृत भाषाओं में निष्णात था ।

एक बार मुरुग भगवान, कचेयप्पा के स्वप्न में साक्षात्कार देकर ऐसा कहा - 'कचेयप्पा! तुम मेरे वैभव का गुणगान 'स्कांद पुराण' स्कंदपुराण 'के रूप में करो ।' तब उत्तर में कचेयप्पा ने कहा - 'हे करुणानिधि! मैं

तुम्हारी कीर्ति का गान करने में समर्थ नहीं हूँ ।' लेकिन भगवान मुरुग ने यह कहा - 'चिन्ता मत करो! मैं कीर्तन की पहली पंक्ति तुम्हारे सामने रखूँगा । बाकी को तुम पूरा करो ।'

कचेयप्पा ने मुरुग भगवान के चरणकमलों के निकट बैठकर कीर्तनों की रचना की । पूरा करते ही उन्हें भगवान के चरण कमलों के निकट रखते थे! वे मंदिर पर ताला लगाकर गये । अगले दिन, शुक्रवार को जब मंदिर में लौट आये तब उन्होंने देखा कि उनकी पांडुलिपि में मुरुग भगवान ने कुछ संशोधन किये ।

जब उनका काम पूरा होता, तो वे बडे पंडितों भक्तों को बुलाते । उसके उपरांत वह पांडुलिपि तथा गणपति की प्रार्थना करता । इसके बाद, वह मंदिर में गीतों को आलापता था । एक दिन एक पंडित ने पहली पंक्ति में गलती दिखायी । पंडित ने कहा - 'हे कचेयप्पा गाना बंद करो । पहली ही पंक्ति में गलती दिखाई ।' कचेयप्पा ने पंडित से कहा - 'हे महापंडित! इस पंक्ति को स्वयं भगवान ने ही संशोधित किया । ऐसे में गलती कहाँ से आ सकती है?' कचेयप्पा ने गाना बंद कर दिया । वहाँ उपस्थित सभी लोग वापस चले गये । कचेयप्पा ने उनसे कहा - 'आप कल आइए, मैं इनका विवरण दूँगा ।'

उसने भगवान की प्रार्थना की, यथा - 'हे भगवान! तुम्हारे कार्य में गलती दिखाई गई । तुम्हारा अपमान भी हुआ । जब तक तुम आकर इसे ठीक नहीं करोगे, तब तक मैं भूखों ही रहूँगा तथा आमरण भूख हडताल करूँगा ।' तब भगवान का साक्षात्कार हुआ और उन्होंने ऐसा कहा - 'हे भक्त! तुम चिन्ता मत करो । कल मैं स्वयं आऊँगा और इसका विवरण भी दूँगा ।'

अगले दिन को सभी लोग मंदिर में एकत्र हुए । सभी ने कचेयप्पा को बोलने के लिए कहा । उनमें से एक व्यक्ति खड़ा हुआ और कहा - 'मैं इसका विवरण दूँगा । यह एक पवित्र ग्रंथ है ('विश्शोयम्' इसकी पहली पंक्ति के सभी शब्द, व्याकरण के सभी शब्दों से मिलता - जुलता है) । इसे सभी पंडितों से स्वीकारा गया ।'

विवरण देकर वह व्यक्ति गायब हो गया । तभी वहाँ के सभी को लगा कि वह व्यक्ति स्वयं भगवान कुमरनकोट्टम् था जिसने विवरण दिया । कचेयप्पा ने एक वर्ष में उस ग्रंथ को पूरा किया । सभी ने ग्रंथ एवं भक्त दोनों को यात्रा में निकलवाकर सम्मान किया ।

22. पूंतनम् : श्रेष्ठ भक्त

भगवान गुरुवायूरप्पन के भक्तों में पूंतनम् श्रेष्ठ कहा जा सकता है । 'नारायणीयम्' कवचम् के प्रणेता भट्टतिरि नंबूदरी जो पूंतनम् के दोस्त थे, उन्होंने इनको एक अंगूठी भेंट के रुप में दिया था जिसे पूंतनम् सदा पहना करते थे ।

एक बार भगवान के दर्शन के लिए पूंतनम् जंगल के मार्ग से गुरुवायूर जा रहे थे । मार्ग में कुछ डाकुओं ने पूंतनम् को बीच में रोका और कहा कि उनके पास जितनी संपदा मौजूद थी, वे सब सौंप दें । डाकुओं ने पूंतनम् के हाथ बाँध दिये । पूंतनम् ने भगवान गुरुवायूरप्पन से अपनी रक्षा करने के लिए प्रार्थना की । डाकुओं ने जोर से हँसकर कहा - 'चिल्लाओ मत! तुम्हें यहाँ कोई बचा नहीं सकता ।' तभी डाकुओं ने अपनी ओर किसी को आते हुए देखा । वे नौ-दो-ग्यारह हो गए । जो लोग वहाँ आये, वे गुरुवायूरप्पन के मंत्री तथा उनकी सेना थी । वहाँ पहुँचते ही उन्होंने पूंतनम् को बंधनों से छुड़वा दिया । पूंतनम् ने कहा - 'भगवान स्वयं ने ठीक समय पर आप लोगों को मेरी रक्षा करने हेतु यहाँ

भेजा है । मैं आपका ऋण कैसे चुका पाऊँगा?' मंत्री न उत्तर दिया - 'आप जिस अंगूठी को पहने हुए हो, उसे मुझे दे दो ।' पूंतनम् ने बिना कुछ सोचे, हिचके, अपनी अंगूठी मंत्री को दे दी ।

अगले दिन पूंतनम् मंदिर में गया । मंदिर के पुजारी ने पूंतनम् को अंगूठी दी । पूंतनम् चकरा गये । उन्होंने पुजारी से पूछा - 'यह अंगूठी आपके हाथों में कैसे आया?' पुजारी ने उत्तर दिया - 'कल रात को भगवान ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि उनके चरणों में जो अगूंठी पडी हुई है, उसे पूंतनम् को सौंप दो ।' पूंतनम् आश्चर्यचकित हुआ और भगवान की प्रार्थना की - 'हे भगवान! आप अपने भक्तों के प्रति कितनी दया रखते हो? तो कल डाकुओं को मुझे बचाने के लिए मंत्री के भेष में तुम ठीक समय पर आये थे ना? तुम बडे दयालु हो स्वामी ।'

23. भीमसेनः श्रीकृष्ण भगवान का प्रियतम भक्त

वनवास के समय एक दिन को पांड़वों ने भगवान श्रीकृष्ण को भोजन के लिए बुलाना चाहा । पांड़वों का भ्राता नकुल ने यह कहा कि मैं श्रीकृष्ण को भोजन के लिए निमंत्रण दे आऊँगा । जब उसने श्रीकृष्ण को बुलाया, तब कृष्ण ने यह कह दिया कि मैं उस दिन को आ नहीं पाऊँगा । अर्जुन ने कहा - 'श्रीकृष्ण तभी आयेंगे जब उनका प्रिय भक्त उन्हें बुलायेंगे ।' अर्जुन बड़ा दंभी, अहंकारी दिखाई दिया । अर्जुन ने फिर कहा - 'श्रीकृष्ण मुझे बहुत चाहते हैं, मैं उनका प्रिय हूँ, मैं उन्हें बुला लाऊँगा ।' अर्जुन, श्रीकृष्ण के पास गये । अर्जुन को श्रीकृष्ण से वही उत्तर मिला जो नकुल को मिला था । श्रीकृष्ण ने यह कहकर अर्जुन को भेज दिया कि मैं उस दिन को आ नहीं सकता, उस दिन को मैं व्यस्त हूँ । तब भीम ने कहा कि मैं श्रीकृष्ण को दावत के लिए निमंत्रण दे आऊँगा । सभी लोग इस पर हँस पडे । क्योंकि हर दिन भीमसेन को छोड़कर

सभी पांडव भाई तथा द्रौपदी प्रातःकाल को उठकर भगवान श्रीकृष्ण की पूजा - प्रार्थना करते हैं । भीमसेन अपने बिस्तर पर पडे रहते हैं और किसी के साथ प्रार्थना में जुड़ते नहीं थे ।

सभी लोगों ने एकसाथ कहा - 'हम सभी में से श्रीकृष्ण के प्रति कम भक्ति रखनेवाले व्यक्ति केवल तुम ही हो । तुम श्रीकृष्ण को दावत पर बिलकुल बुलाकर ला नहीं पाओगे ।' सभी की एक ही राय थी ।

भीमसेन ने कहा - 'आप लोग चिन्ता मत करो । मैं जाकर श्रीकृष्ण की लिवा लाऊँगा ।' उसने द्रौपदी को आदेश दिया - 'द्रौपदी, तुम भोजन बनाकर तैयार रखो । मैं श्रीकृष्ण को बुला लाऊँगा ।' श्रीकृष्ण के पास जाकर भीम ने कहा - 'हे श्रीकृष्ण! आपको हमारे साथ भोजन खाना होगा । आपके बिना हम भोजन नहीं खायेंगे । द्रौपदी ने खाना बनाना प्रारंभ कर ही दिया ।' ऐसा कहते हुए भीम ने अपनी गदा उठाकर प्रण लेते हुए कहा - 'अगर श्रीकृष्ण मेरे साथ भोजन खाने के लिए नहीं आयेंगे तो मेरा सिर टुकडे - टुकडे हो जाये ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर कहा - 'हे भीम! तुम मेरे सच्चे भक्त हो । तुम मेरे लिए अपने प्राणों को भी त्यागने के लिए तैयार हो गये हो ।' श्रीकृष्ण, भीमसेन के साथ, भोजन खाने के लिए उनके घर गये । वही सच्चे भक्त निकले । बाकी पांड़वों की भांति उसके पहले उन्होंने कभी श्रीकृष्ण के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित नहीं किया ।

24. नारायण मंत्र का प्रभाव

एक बार नारद मुनि, श्रीविष्णु के पास आये, नमन किया तथा एक प्रश्न भगवान से पूछा - 'हे विश्व के विधाता! जगन्नाथ! आपके सारे भक्तगण आपका नामोच्चारण निरंतर मंत्र की भांति करते रहते हैं ।

उसकी महानता, माहात्मयम् का कृपया विवरण दीजिए ।' तब श्री महाविष्णु ने नारद से कहा - 'आप किसी भी प्राणी के कान में मेरा नाम 'नारायण' कहकर देखो कि उसके उच्चारण से क्या होता है?'

इसे सुनकर नारद ने अपना रास्ता पकड़ लिया । मार्ग में नारद को एक कीड़ा दिखाई दिया । नारद ने उसके कानों में लगातार 'नारायण' नाम का उच्चारण किया । 'नारायण' नाम सुनते ही कीड़ा मर गया । नारद जी को यह बुरा लगा । लेकिन रास्ता मोलते चले । थोड़ी दूर जाने के बाद उनको फूल पर मंड़राती एक तितली दिखाई दी । नारद जी ने कानों में दो बार 'नारायण' नाम का उच्चारण किया । नाम को सुनते ही तितली भी चल बसा । नारद जी चलते चले । थोड़ा चलने के बाद उनको हिरण का एक नवजात शिशु दिखाई दिया । नारद ने उसके कानों में भी 'नारायण' का मंत्र जाप किया । मृग शिशु भी मर गया ।

नारद मुनि सीधे श्रीमहाविष्णु के पास गये और उनको हर किस्सा पूरे विस्तार के साथ सुनाया । मुनि ने ऐसा कहा - 'हे भगवान! मैं ने जैसे ही आपका नाम सुनाया, तैसे ही कीड़ा, तितली तथा हिरण का नवजातशिशु ने मृत्यु को प्राप्त किया । मैं इस प्रकार मासूम प्राणियों की हत्या नहीं कर सकता । उस पाप को मैं ढो नहीं सकता । कृपया आपके नाम मंत्र के उच्चारण के परिणाम तथा उसके माहात्म्य को सीधे - सीधे मुझे बता दीजिए ।'

भगवान ने मुनि से कहा - 'आप अंतिम बार प्रयास करके इस नाम का उच्चारण कीजिए । देखिए उधर एक गोवत्स अपनी माँ के पास खड़ा है । आप इस मंत्र को उसके कानों में सुनाइए ।' मुनि ने भगवान के वचनों का पालन किया । नारायण का मंत्रोच्चारण करते ही गोवत्स भी यथास्थान मर गया ।

भगवान ने नारद मुनि से एक बात कही - 'हे मुनीन्द्र! यह अंतिम बार है । वारणासी के राजा को अभी - अभी पुत्र पैदा हुआ । आप जाकर इस मंत्र को उसके कानों में पहुँचाओ ।' नारद मुनि राजा के पास गये । राजा ने बड़े सम्मान के साथ मुनि का स्वागत किया । राजा ने कहा - 'मैं बहुत भाग्यशाली हूँ । अभी - अभी मुझे पुत्र पैदा हुआ, आप कृपया उसे आशीर्वाद दो ।'

नारद मुनि ने नवजात शिशु के कानों में 'नारायण'... 'नारायण'... 'नारायण' का नाम लिया । आश्चर्य की बात है कि, जैसे ही 'नारायण' का नाम लिया, नवजातशिशु एकाएक बोलने लगा । यथा -

'हे महर्षि! तुम्हें मेरा नमस्कार! क्या अब आपको नारायण नाम मंत्र का माहात्म्य मालूम हुआ?' उसने आगे कहा - 'मैं ही कीड़ा था । जैसे ही मैं ने नारायण मंत्र को सुना, मैं मर गया, मैं ने तितली का जन्म लिया, उसके बाद हिरण का और उसके बाद गोवत्स का । अब अंततोगत्वा मुझे मानव की योनी मिली और मैं ने राजा के परिवार में जन्म लिया । यह सभी 'नारायण' महामंत्र के कारण ही हुआ । यही इस पवित्र मंत्र की महानता है ।'

25. महादाता कर्ण

एक दिन अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से प्रश्न किया - 'सभी लोग केवल कर्ण को ही महादानी मानते हैं? मैं भी लोगों को दान देता हूँ ।' श्रीकृष्ण ने अर्जुन के संदेह को मिटाने के लिए दान प्रतियोगिता का आयोजन किया था । अगले दिन श्रीकृष्ण ने दो पहाड़ों की सृष्टि की - एक सोने की, एक रजत की । उन्होंने अर्जुन से कहा - 'हे अर्जुन! अगर तुम इन दोनों पहाड़ों को शाम से पहले दान दोगे तब तुम कर्ण के समान दानी माने जाओगे ।'

अर्जुन ने सहमति दी ।

पूरे गाँव में इस बात का प्रचार करवाया गया कि अर्जुन दान दे रहा है । उसे सुनकर बहुत सारे लोग दान लेने आये भी । अर्जुन लगातार स्वर्ण तथा रजत से बने पहाड़ों को तोड़ता गया व दान देता गया । इतना देने के बावजूद स्वर्ण व रजत पहाड़ों का आधा भाग ही दान में दिया गया था ।

उसके बाद अगले दिन भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण के लिए बुलावा भेजा । कर्ण से कहा गया कि तुम्हें सुबह से शाम तक इन दोनों पहाड़ों को दान देना होगा ।

तभी दो व्यक्ति उस ओर से उस मार्ग में जा रहे थे । कर्ण ने उन दोनों को अपने पास बुलाया । उसने उन दोनों से कहा - 'यहाँ स्वर्ण और रजत के दो पहाड़ हैं । आप में से एक आदमी स्वर्ण का पहाड लो और दूसरा रजत का । आप दोनों इन्हें लेकर धनवान बन जाओगे, लो ।' तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा - 'अब तुम्हारे तथा कर्ण के बीच के अंतर को तुम जान गये होगे । तुम केवल टुकडे दान दे रहे थे, लेकिन कर्ण ने पूरे - पूरे पहाड़ों को एक साथ दान में दे दिया ।' इसलिए कर्ण ही दूसरों से बढ़ा हुआ दानशील है, महादाता है ।

26. पिप्पलाद का अविवेकी वरदान

वृत्रासुर को मारने के लिए अपनी हड्डियों से वज्रायुध बनवाने दधीचि मुनि ने देवताओं के राजा इंद्र की सहायता में अपना जीवन त्याग दिया । लेकिन पिप्पलाद ने यह समझ रखा था कि इंद्र ने उसके पिताजी को मार दिया । उसको यह मालूम नहीं था कि दधीचि ने स्वेच्छापूर्वक अपना जीवन दान दिया । वह इंद्र से प्रतिशोध लेना चाहा ।

पिप्पलाद ने कठोर तपस्या करके शिव को प्रसन्न कर वर माँगना चाहा । उसको ऐसा वर चाहिए था कि वह इंद्र सहित सभी देवताओं को मार सके ।

शिव जी पिप्पलाद की तपस्या से प्रसन्न हुए तथा उसे कोई वर माँगने को कहा । पिप्पलाद ने शिव जी से ऐसा कहा - 'हे भगवान शिव! तुम अपना तीसरा नेत्र खोलकर इंद्र सहित सभी देवताओं को भस्म कर दो ।'

शिवजी ने पिप्पलाद से पूछा - 'हे भक्त! तुमने क्या इसलिए तपस्या की कि मैं अपना अग्नि नेत्र खोलकर पूरे विश्व को जला दूँ ? मैं एक बार अपना नेत्र खोलूँगा तो पूरा विश्व जलकर राख हो जाएगा ।' पिप्पलाद ने शिव को वही वर देने के लिए आग्रह किया, हठ किया । शिव जी ने उससे कहा - 'हे वत्स! लोग यब भूल जाते हैं वे क्या कर रहे हैं जब वे क्रोध या प्रतिशोध से भरे रहते हैं । फिर भी, मैं अपना तीसरा नेत्र तुम्हारे हठ के कारण खोलूँगा, तुम्हें उसके परिणाम बाद में मालूम होगा ।' शिव भगवान ने अपना तीसरा नेत्र थोड़ा खोला । पिप्पलाद को ऐसा लगने लगा कि उसका शरीर जल रहा है । जलन के कारण पीड़ा जब हुई, तब उसने चीखना प्रारंभ किया । उसने शिव जी की निन्दा करने लगा । ''हे भगवान! इंद्र तथा देवताओं को जलाने की बजाय, आप मुझे क्यों जला रहे हो?'' तब शिवजी ने ऐसा कहा - 'मैं तुम्हें जला नहीं रहा हूँ । मैं देवताओं को ही जला रहा हूँ । क्या तुम जानते हो कि देवता कहाँ हैं? वह हर प्राणी के देह में रहता है । इंद्र तुम्हारे में वास करता है, तुम्हारी आँखों में सूर्य (सूर्य भगवान), तुम्हारी नाक में अश्विनी कुमार तथा तुम्हारे मस्तिष्क में चंद्रमा वास करता है । इसलिए जब मैं देवताओं को जला रहा हूँ, तुम इसे मेहसूस कर रहे हो ।'

पिप्पलाद की अविवेक बुद्धि दूर हुई, उसकी आँखें खुली, उसको अपनी दुर्बुद्धि के परिणाम मिले । उसने तुरंत शिवजी के आगे साष्टांग प्रणाम कर उनकी स्तुति की - 'हे शिव भगवान! आप अपना तीसरा नेत्र बंद कर लीजिए । मुझे ऐसा वर दो कि मैं आपका सदा भक्त रह जाऊँ । मुझे कुछ और नहीं चाहिए भगवान ।'

27. दिव्य संगीतज्ञ हरिदास

दिल्ली के बादशाह अकबर के दरबार में तानसेन नामक एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ विराजते थे । अकबर ने तानसेन से एक दिन कहा था - 'संगीत में तुम अद्वितीय हो, तुम्हारा समकक्षी कोई हो ही नहीं सकता ।' लेकिन तानसेन ने कहा - 'नहीं जनाब! एक व्यक्ति है जो मुझसे बढ़कर है ।' बादशाह ने पूछा - 'कौन है वह? कहाँ पर है?' 'उनका नाम 'हरिदास' है, वे मेरे गुरु हैं । वे वृंदावन में रहते हैं । वे साधु - संत हैं । तब बादशाह ने कहा - 'नहीं! मुझसे कहा गया है कि वे अपने वृंदावन से बाहर नहीं निकलते, इसलिए हम उनके जीवन में दखलंदाज नहीं दे सकते । लेकिन उनके संगीत को सुनने के लिए कोई और रास्ता है क्या?' तानसेन ने कहा - 'जहाँपनाह! अगर आप इतनी रुचि रखते हैं तो आप उनके वृंदावन में उनके शिष्य के भेष में जा सकते हैं ।'

अकबर ने शिष्य के रुप में वृन्दावन में जाने का निर्णय लिया । तब तानसेन ने सहमति दी तथा कहा कि मैं आपके साथ वृंदावन चलूँगा । दोनों वृंदावन के पास गये ।

उस दिन शाम को हरिदास के आश्रम में, अपने गुरु के समक्ष तानसेन ने गाना प्रारंभ किया । जानबूझकर उन्होंने गाते समय कुछ गलतियाँ की थी । हरिदास ने कहा - 'तानसेन! इस गाने को ऐसा नहीं गाते । मैं तुम्हे. गाकर सुनाऊँगा ।' अकबर आश्चर्यचकित होकर कहने लगे । 'ऐसा लग रहा है कि स्वयं भगवान ही इसे गा रहे हों । तानसेन! आप बड़े भाग्यवान हो कि आपको ऐसा गुरु मिला । यह राग पत्थरों को भी पिघला देता है । ऐसा स्वर उनको कहाँ से तथा कैसे ही मिला?'

तानसेन ने तब उत्तर दिया - 'जहाँपनाह! मेरे गुरु मुझ जैसे सामान्य व्यक्तियों के लिए नहीं गाते । उनका संगीत केवल भगवान को ही अर्पित होता है ।'

अकबर ने कहा - 'चूँकि उनका संगीत केवल भगवान को समर्पित है, इसलिए वह दिव्य संगीत है ।' तानसेन ने अपने गुरु हरिदास से कहा - 'हे गुरुदेव! जो आये हैं, वे स्वयं बादशाह अकबर हैं । वे मेरे शिष्य के भेष में आपके संगीत को सुनने के लिए आये हैं । कृपया उन्हें आशीर्वचन दीजिए ।'

दिल्ली वापस लौटते समय अकबर ने कहा - 'उनके संगीत ने मुझमें परिणति ला दिया । मुझे हरि और अल्लाह में कोई भेद दिखाई नहीं देता ।'

उस संत का संगीत आज भी वृंदावन में सुनाई देता रहता है ।

28. परम भक्तिन अलगि

राजराजचोल, तमिलनाडु के राजा थे । वे शिव भक्त थे । तंजाउर जो उनके राज्य का केन्द्र था, वहाँ उन्होंने भगवान शिव का मंदिर बनवाना चाहा । हजारों की संख्या में मजदूर तैनात हुए जो चौबीस घंटे काम पर कार्यरत थे । उस गाँव में एक बूढ़ी रहा करती थी, जिसका नाम अलगि था । पूरे गाँव के लोग मंदिर के निर्माण में व्यस्त थे लेकिन अलगि कुछ भी नहीं करती थी । इसलिए अलगि को ग्लानि होती थी । एक बार एक मजदूर ने अलगि से पूछा - 'हे माँ! आप मुझे थोड़ा छाछ दीजिए । मुझे बहुत प्यास लगी है । अलगि ने छाछ दिया । उसके बाद उन्होंने सोचा - 'मैं इन मजदूरों जो शिव मंदिर बना रहे हैं, इनको क्यों न छाछ दूँ? वही शिवजी के लिए मेरी सेवा होगी ।'

तब से अलगि प्यासे मजदूरों को छाछ देने लगी । मजदूर इस औरत को साधुवाद देते थे - 'भगवान शिव आपकी दयालुता पर संतुष्ट होंगे और आपको आशीर्वचन देंगे । छत की आखरी ईंट के रखते ही मंदिर का निर्माण पूरा हो जायेगा । अलगि बहुत दुःखी हुई क्यों कि काम पूरा

होते ही मजदूर चले जायेंगे । यह बूढ़ी औरत किसकी मदद करेगी तथा किसकी प्रयास बुझायेगी । उसके पास दान देने के लिए पैसा भी नहीं था ।'

अचानक उसकी आँखें अपने कुटीर के सामने के एक पत्थर पर पडी । उसने मंदिर के मुख्य शिल्पी से कहा - 'हे स्वामी! मेरी एक छोटी - सी इच्छा की आप पूर्ति करोगे क्या?' शिल्पी ने जवाब दिया - 'हे माँ! कहो मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?' अलगि ने कहा - 'मेरे कुटीर के सामने एक पत्थर है जो शिखर का अंतिम ईंट के समान काम आ सकता है । आप क्या उसे छप्पर के अंतिम पत्थर के रूप में उपयोग करोगे?' मुख्य शिल्पी ने उसके लिए सहमति दी । उस रात को राजा के स्वप्न में शिव जी का दर्शन हुआ । भगवान ने दर्शन देकर ऐसा कहा - 'हे राजा! अलगि ने जिस पत्थर को छत पर रखने की बात कही, वह मुझे बहुत अच्छा लगा, अगर वही हो तो मैं प्रसन्न हो जाऊँगा ।'

राजा ने अलगि के बारे में मुख्य शिल्पी से पूछताछ करके, उनसे मिला तथा ऐसा कहा - 'हे माँ! आपकी भक्ति ने भगवान शिव को प्रसन्न कर दिया । राजा ने उस वृद्धा के संस्मरण में मंदिर के सामने एक तालाब बनवाया और उस तालाब को उसी वृद्धा का नाम दिया । आज भी वह विद्यमान है ।'

29. दधीचि का त्याग

अश्विनी कुमार, देवताओं के दिव्य चिकित्सक थे । वे ब्रह्मविद्या को सीखना चाहते थे । लेकिन देवताओं के राजा इंद्र को यह अच्छा नहीं लगता था । उनको यह भय था कि वे अपनी गद्दी खो बैठेंगे । इसीलिए उन्होंने सभी को आदेश दिया कि कोई उन्हें ब्रह्म विद्या न सिखायें । इन्द्र

ने यह भी चेतावनी दी थी कि अगर किसी ने अश्विनी कुमारों को ब्रह्म विद्या सिखाई, तो उनका सिर खंडित किया जायेगा ।

अश्विनी कुमार दधीचि मुनि के पास गये तथा प्रार्थना की कि वे उन्हें शिष्य बना लें तथा उन्हें ब्रह्म विद्या सिखायें । दधीचि ने एक शर्त लगाकर कहा - 'जब लोग गुरू के पास आयेंगे, तब गुरु को भय या लोभ के कारण आगंतुकों को वापस भेजना नहीं होता है ।' लेकिन इंद्र से मुझे कौन बचायेगा?' तब अश्विनी कुमारों ने इंद्र से दधीचि को बचाने के लिए एक उपाय सुझाया । उन्होंने कहा - 'हम आपके सिर को काट देंगे और उसके स्थान पर अश्व का सिर जोड़ेंगे । हम आपके सिर को सुरक्षित रखेंगे । आप हमें घोड़े के मुँह से ब्रह्म विद्या सिखाइए ।'

इंद्र को इनके उपाय का पता चला । वे कुल्हाड़ी से दधीचि के सिर को काटने तैयार हो गए । दधीचि मर भी गए । अश्विनी कुमारों को सिर जोड़ने की विद्या मालूम था । इस रूप में दधीचि पुनः जीवित हुए तथा अश्विनी कुमारों को ब्रह्म विद्या सिखाया । अश्विनी कुमार, दधीचि के आश्रम को छोड़ कर चले गए ।

दधीचि को मारने के कारण, एक मुनि ने इन्द्र के विरोध में एक यज्ञ किया । यज्ञकुंड़ की ज्वालाओं से वृत्रासुर नामक एक असुर पैदा हुआ । दधीचि ने वृत्रासुर को देवलोक से इन्द्र को भगाकर उनकी गद्दी को हड़पने के लिए कहा ।

वृत्रासुर देवलोक में गया । वृत्रासुर तथा देवताओं के बीच एक भीषण युद्ध छिडा । वृत्रासुर ने देवताओं के समस्त शस्त्र निगल दिया तथा इन्द्र को देवलोक से भगाने लगा । इन्द्र, ब्रह्म के पास जाकर उन्हें बचाने के लिए प्रार्थना की । ब्रह्म ने भगवान विष्णु की प्रार्थना की । तब श्रीमहाविष्णु ने उन से ऐसा कहा - 'दधीचि मुनि की हड्डियों से बना अस्त्र ही वृत्रासुर को मार सकता है । आप जाकर उनसे संपर्क करो ।'

इन्द्र, दधीचि के पास जाकर याचना की यथा - 'हे मुनि श्रेष्ठ! मेरे अशिष्ट व्यवहार के लिए मैं क्षमा चाहता हूँ, मुझे बचाइए तथा आशीर्वाद दीजिए ।' दधीचि अपने अंदर ही कहने लगा - 'इंद्र अपने को बचाने के लिए मेरे प्राणों का हरण करना चाह रहा है । निश्चित ही किसी-न-किसी दिन को इस देह का अंत होना जरूरी है । एक अच्छे कारण के लिए कम-से-कम इस देह का मैं उपयोग करुँ । देवताओं तथा इंद्र को बचाकर वृत्रासुर का अंत करना ही इस देह का उपयोग होना चाहिए ।'

उन्होंने इंद्र से कहा - 'इससे पहले आपने मेरा सिर काटना चाहा, अब आपको मेरी हड्डियाँ चाहिए, ले लो', कहते हुए दधीचि ने प्राण त्याग दिया तथा गिर पडे । जंगली जानवरों ने उनके माँस को खा लिया तथा हड्डियों को इंद्र के लिए छोड दिया । इंद्र ने दधीचि की देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा को सौंपा और उनसे वज्रायुध को बनाने के लिए कहा ।

इस वज्रायुध से इन्द्र ने वृत्रासुर को मार दिया । इन्द्र, जो दधीचि के शत्रु थे, उनकी रक्षा हेतु दधीचि ने अपने जीवन तक को त्यागने के लिए तैयार हुए । यही उनकी महानता है ।

30. भगवान कृष्ण को मिठाई समर्पण

भगवान श्रीकृष्ण अपने सखों के साथ यमुना नदी के किनारों पर खेलता था । श्रीकृष्ण के दोस्त हर दिन कुछ - न- कुछ खाने को ला देते थे और श्रीकृष्ण उसे स्वीकार कर अपने दोस्तों में भी बाँटता था ।

मधुमंगा सांध्य का पुत्र था । उसको यशोदा माँ हर दिन भोजन दिया करती थी । एक बार श्रीकृष्ण ने मधुमंगा से पूछा - 'हे मधु! तुमको छोड़कर सभी ने मेरे लिए कुछ- न-कुछ खाने को दिया । आज मेरे लिए कुछ लाओ, भूलो मत!' जब मधुमंगा ने अपनी माँ से खाने को कुछ माँगा, तो उन्होंने मधु से कहा - 'मधु बेटे! हमें खाने को तभी कुछ

मिलता जब तक तुम्हारे पिताजी की पूजा पूरी नहीं होती । घर में थोड़ा खट्टा दही है, उसमें थोड़ा चीनी डालकर दूँगी, तुम उसे श्रीकृष्ण को दो ।' मधुमंगा ने उसे लिया, लेकिन रास्ते में ऐसा सोचता गया - 'जो नित्यप्रति अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ खाने वाले श्रीकृष्ण को ऐसा खट्टा दही कैसे खिलाऊँ? नहीं, नहीं मैं स्वयं इसे खा लूँगा ।' ऐसा कहते हुए वह एक वृक्ष के पीछे जाकर खाने लगा । वृक्ष के ऊपर कन्हैया बैठा था । ऊपर से मधुमंगा को देखकर वहाँ आया और कहा - 'हे मधुमंगा तुम्हारी माँ ने उसे मेरे लिए भेजा था, उसे तुम क्यों खा रहे हो?' कृष्ण के उस तक पहुँचने से पहले मधुमंगा ने सारा दही पी डाला । कृष्ण ने मधुमंगा के होंठों को चाटा । कृष्ण ने एकदम चीखकर कहा - 'तुम ने मुझे मधु दिया । कितना मीठा है रे!' उसके जितने दोस्त इर्द - गिर्द थे, वे सभी भी आनंदपूर्वक कहने लगे - 'हे कृष्ण! हे भगवान! तुम अपने भक्तों के दास हो । तुम्हें अपने भक्तों के द्वारा जो भी दिया जाता है, उसे तुम बडे चाव के साथ लेते हो कान्हा!'

31. महाज्ञानी शुकदेव

वेदव्यास जो महाभारत तथा अन्य पुराणों के प्रणेता हैं, उस मुनि के पुत्र शुकदेव हैं।

शुकदेव महान विद्वान तथा प्रबुद्ध पंडित थे । उन्होंने शुकदेव को सब कुछ सिखाया था । एक दिन वेदव्यास ने शुकदेव से कहा - 'हे पुत्र!' मैं ने तुम्हें सब कुछ सिखाया जो मैं जानता था । अब मैं तुम्हें मिथिला नरेश जनक के पास भेजूँगा । शुकदेव ने पूछा - 'आप मुझे जनक के पास क्यों भेज रहे हो?' वेदव्यास ने कहा - 'वे तुम्हें ब्रह्म विद्या सिखायेंगे ।' जनक महाराज शासक होने पर भी वे एक मुनि हैं । वे सांसारिक बंधनों से मुक्त रहते हैं । तपोबल के कारण जनक को मालूम था कि शुकदेव उनके पास आयेंगे । उन्होंने अपने सिपाहियों को बुलाकर कहा - 'हे

सैनिकों! शुकदेव यहाँ आनेवाले हैं । किसी को भी उन्हें स्वागत या सम्मान देने की आवश्यकता नहीं है ।' शासक के आदेश को सुनकर सभी आश्चर्यचकित हुए ।

शुकदेव राजभवन में आये । किसी ने उनका स्वागत नहीं किया । किसी ने उनसे बात - चीत तक नहीं की । शुकदेव पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडा । वे तीन दिनों तक बिना व्याकुल हुए भवन के द्वार पर आरम से बैठे रहे । चौथे दिन को स्वयं शासक अपने सैनिक तथा मंत्रियों सहित शुकदेव के पास आये तथा उनका स्वागत किया । उनका सम्मान इसलिए किया गया था कि वे महान श्रेष्ठ मुनि थे ।

कुछ दिन ऐसे ही बीत गये । शुकदेव कभी व्याकुल नहीं हुए । वे जब नजरंदाज किये गये तब भी दुःखी नहीं हुए और आदर के समय इतना संतुष्ट भी नहीं । दसवें दिन उन्हें संगीत एंव नृत्य से मनोरंजन किया गया था । मनोरंजन के दौरान राजा ने एक कटोरी में दूध भरकर शुकदेव को दिया तथा कहा कि 'हे शुकदेव वत्स! तुम को इसे लेकर पूरे कमरे में सात बार घूमकर आना होगा, लेकिन याद रखना, एक बूँद दूध को भी नीचे गिराना नहीं चाहिए ।' शुकदेव के लिए यह असंभव कार्य नहीं था । वह भले ही छोटा बालक था, लेकिन बड़ा ज्ञानी था । मनोरंजन का संगीत या नृत्य उसे बेचैन करनेवाले उपाय नहीं थे । शुकदेव ने बड़ी आसानी से अपने काम को पूरा किया । शुकदेव ने एक बूँद दूध भी नीचे नहीं गिराया । जनक महाराज बहुत संतुष्ट हुए । उन्होंने शुकदेव से कहा - 'हे वत्स! मैं ने जितनी परीक्षायें आप पर चलाया, उनसे पता चला कि आप पहले से ही ब्रह्मज्ञानी हो । मेरे पास आप को सिखाने के लिए कुछ नयी बात नहीं रही । ब्रह्मज्ञान का अर्थ होता है सांसारिक बंधनों से मुक्त रहने की शाक्ति रखना । तुमने उसे पहले से ही प्राप्त कर लिया ।'

शुकदेव अपने पिताजी के पास लौट गये ।

32. राजा अम्बरीश

राजा अम्बरीश, एक श्रेष्ठ भक्त थे । वे एक बार एकादशी उपवास का व्रत रखा था । दूसरे दिन उनको सूर्योदय के तुरंत बाद नाश्ता (पारण) खाना था ।

एक बार जब राजा नाश्ता खाने को थे, तभी दूर्वास मुनि राजा के पास आये । राजा ने उनका स्वगत किया तथा अपने साथ नाश्ता खाने के लिए प्रार्थना की । मुनि ने सहमति दी, लेकिन कहा - 'मैं यमुना नदी में पहले स्नान करके जल्दी लौटकर आऊँगा ।'

लेकिन मुनि ने लौटने में देरी लगा दी । शास्त्र के अनुसार, व्रत को नियमित समय में ही करना होता है । प्रधान अर्चक के कहने पर राजा ने व्रत को काटकर मुनि के लौटने से पहले, बिना उनका इंतजार किए, खाना खा लिया ।

दूर्वास मुनि जब लौटे, तो पाया कि राजा ने मुनि के लौटने तक न रुककर, उनका नजरंदान करके खाना खा लिया । इसलिए दूर्वास मुनि बहुत क्रुद्ध हुए । अपने तपोबल से उन्होंने एक राक्षस की सृष्टि की तथा उसे आज्ञा दी कि वह अम्बरीश को मार दे । अम्बरीश ने न राक्षस को मारा और न ही शाप को मारा, बल्कि राजा ने भगवान की प्रार्थना की । तुरंत ही श्रीमहाविष्णु का सुदर्शन चक्र आया तथा राक्षस को मार दिया । इसके बाद वह दूर्वास मुनि का पीछा करने लगा ।

भयभीत होकर दूर्वास मुनि भगवान ब्रह्म, भगवान शिव तथा देवेन्द्र के पास दौड़कर उनकी रक्षा करने के लिए प्रार्थना की कि वे सुदर्शन चक्र से उनकी रक्षा करें । 'हम आपकी रक्षा नहीं कर सकते ।' तब राजा

श्रीमहाविष्णु के पास दौडकर गये जिन्होंने अपने चक्र को इनु पर छोड़ा । दूर्वास ने श्रीमहाविष्णु से प्रार्थना की - 'मैं भी आपका भक्त हूँ । ऐसे में आप केवल अम्बरीश पर ही दया क्यों दिखा रहे हैं?' तब श्रीमहाविष्णु ने उत्तर दिया - 'सही है, मुझे तो दोनों की रक्षा करनी है। अम्बरीश ने अपनी रक्षा आप रखने का सामर्थ्य रखता है लेकिन उसने मेरी शरण माँगी ।'

दूर्वास ने तब कहा - 'हे दयामयी! अब मेरे लिए कौन - सा रास्ता बचा है?' श्रीमहाविष्णु ने कहा - 'आप अम्बरीश से क्षमा याचना कीजिए । यही एकमात्र रास्ता है।' दूर्वास मुनि ने अम्बरीश के आगे घुटने टेककर उनसे प्रार्थना की । तुरंत ही सुदर्शन चक्र भगवान श्रीमहाविष्णु के हाथों में वापस लौट गया ।

33. भक्त सेनानवी के रूप में भगवान की लीला

सेनानवी, राजा का शाही नाई था । वह श्रीमहाविष्णु का महा भक्त था । हर सुबह, घर से बाहर निकलने से पहले वह श्रीमहाविष्णु की पूजा करने के बाद ही राजभवन में जाता था ।

एक दिन भक्ति परवशता में विलीन रहकर समय पर राजभवन पहुँचना नहीं हो पाया । नाई की पत्नी घबरा गई थी क्योंकि उसके पति राजभवन नहीं पहुँच पाया और इसके लिए राजा क्रुद्ध हो जायेगें ।

इसी बीच राजभवन से एक सेवक सेनानवी के घर आ पहुँचा । सेनानवी की पत्नी ने उससे कहा - 'हे सेवक! वे भगवान की पूजा कर रहे हैं । पूरा करने के बाद वे वहाँ पहुँचेंगे ।' सेवक ने कहा - 'हे माँ! राजा ने उनको तुरंत भवन में ले आने की आज्ञा दी ।' नाई की पत्नी ने कहा - 'हे सेवक! अभी उनकी पूजा में मैं विघ्न नहीं डाल सकती ।'

सेवक ने राजा के पास जाकर यह कहा कि नाई उनके साथ नहीं आया । राजा बहुत क्रुद्ध हुआ और ऐसी आज्ञा दी - 'कोई सेवक नाई के घर जायें तथा उसे बाँधकर यहाँ ले आये ।' सेवकों के जाने से पहले सेनानवी अपनी सामग्री के साथ भवन की ओर आते हुए दिखाई दिया । सेवक उसे बांधकर राजा के पास ले गये ।

राजा ने उसके बंधन को खुलवाकर सेनानवी से कहा कि हर दिन की भांति मेरा मालिश करो । मालिश करते समय राजा को असाधारण आनंद मिला । राजा की नजर बर्तन में रखे तेल पर पड़ी । राजा ने आश्चर्यपूर्वक तेल के बर्तन में सेनानवी की छाया के बदले श्रीमहाविष्णु की प्रतिछाया तथा उसके हाथों में क्षुरपत्रित को लिए हुए को देखा । राजा ने पूछा - 'सेनानवी! मैं तुम्हारे मालिश से अति प्रसन्न हुआ, तुम मेरे ही महल में सर्वदा के लिए क्यों नहीं रह सकते?'

नाई ने उनकी बात को ठुकराते हुए कहा - 'हे प्रभू! अगर मैं यहीं पर ठहर जाऊँगा तो मेरे अन्य जो भी काम होते हैं उसका क्या होगा? जब भी आप आज्ञा दोगे, उसी समय मैं आपके यहाँ हाजिर हो जाऊँगा' राजा ने नाई को एक थैली भर सोने के सिक्के दिये तथा उससे कहा - 'मेरे नहाकर आने तक यहीं रहो, यहाँ से मत जाओ ।'

सिपाही के साथ जो राजमहल में नाई के रूप में आया और राजा की सेवा की थी, वह सेनानवी नहीं था बलिक वह स्वयं श्रीमहाविष्णु था, छद्म सेनानवी था। वह अपने भक्त को राजा के द्वारा दिये जाने वाले दण्ड़ से बचाने को आया था ।

घर पर सेनानवी भगवान के ध्यान में मग्न था । श्रीमहाविष्णु सेनानवी के घर आया तथा उसके घर पर राजा के द्वारा दी गई स्वर्ण सिक्कों से भरी थैली रखकर गायब हो गया ।

राजा नहाकर आया तथा सेनानवी को अपने कमरे में नहीं पाया। राजा ने पुनः सेनानवी को भवन में लिवा लाने के लिए सेवक को भेजा। सेवक नाई के घर आकर सेनानवी को बुलाया। सेनानवी की पत्नी ने पति से कहा कि फिर से आये सेवक के साथ राजमहल में जाओ।

सेनानवी तुरंत राजमहल पहुँचा। राजमहल में सेनानवी को देखते ही राजा, ने उसे अपने बाहों से आलिंगन किया। राजा ने प्रश्न किया - 'तुम क्यों चले गये। मैं तुम्हारी छाया तेल के बर्तन में देखना चाह रहा था।' सेनानवी की समझ में कुछ नहीं आया। उसने राजा से पूछा - 'हे राजन्! मैं अभी - अभी ही तुम्हारे पास आया हूँ। अभी तक मैं घर पर बैठकर पूजा - पाठ तथा ध्यान कर रहा था।' राजा ने आश्चर्यपूर्वक पूछा - 'तब कुछ समय पहले किसने मेरा क्षुराकर्म तथा मालिश किया?'

सेनानवी ने जान लिया कि श्रीमहाविष्णु ने ही नाई के भेष में आकर राजा का क्षुराकर्म तथा मालिश किया है। सेनानवी ने संतोषातिरेक में कहा - 'हे राजन्! आप बहुत भाग्यशाली हो। आप को भगवान का दर्शन हुआ तथा उनसे सेवा भी ली। भगवान सदा अपने भक्तों की रक्षा करेंगे।'

34. कावडि कथा

हिमालय पर्वत श्रेणियों में शिव गिरि और शक्ति गिरि नामक दो पहाड़ हैं। उसे उत्तर भारत से दक्षिण भारत जो अगस्त्य मुनि का स्वधाम था, वहाँ ले आने के लिए अगस्त्य मुनि ने सोचा। भगवान मुरूगा के द्वारा प्रदत्त शक्ति व आशीर्वाद के कारण, अगस्त्य मुनि उन पर्वतों को उठाकर ले आने लगा। चलते समय तिरूकेदरम नामक स्थान के पास स्थित जंगल में आराम लेने के लिए अगस्त्य ने उन पर्वतों को वहाँ उतारा। भगवान मुरूगा के आशीर्वचन प्राप्त इडुम्बासुर उस ओर आने लगे।

उसने अगस्त्य मुनि को नमन किया तथा मुनि से पूछा - 'हे मुनिवर! मैं बाकी जीवन भगवान मुरूगा की सेवा में बिताना चाहता हूँ, कृपया मुझे आशीर्वाद दीजिए ।'

मुनि ने उत्तर दिया - 'इन पहाड़ों को मेरे स्थान पर पहुँचाओ । मुरुगा तुम्हें आशीर्वाद देंगे ।' इडुम्बासुर ने इस बात को बडे चाव से स्वीकार किया । जब असुर ने उन पहाडों को उठाने का प्रयास किया तब उन्हें, वह जरा भी हिला नहीं पाया । असुर ने मुनिवर से पूछा - 'हे मुनिश्रेष्ठ! मैं ने इससे भी बड़े बडे पहाड़ों को हिलाया है, लेकिन इन पहाड़ों को मैं हिला नहीं पा रहा हूँ । इसलिए मुझे पर्याप्त शक्ति दो ताकि मैं इन्हें आपके स्थान को पहुँचाऊँ ।'

मुनिवर ने इडुम्बासुर से कहा कि तुम भगवान मुरूगा की प्रार्थना करो । इडुम्बासुर ने अगस्त्य के वचनों का पालन किया । इतने में आठ सर्पो का साक्षात्कार हुआ और वे सभी रस्सियों में बदल गये । ब्रह्मदण्ड़ एक बड़े लकड़ी लट्ठा में परिवर्तित हुआ । मुनि ने इडुम्बासुर से पूछा - 'चारों रस्सियों को उस लकडी लट्ठे से बाँधो और बाद में उठाओ ।' इडुम्बासुर ने उसे कावड़ी के रूप में उठाया । मुनि ने उससे कहा 'तुम दक्षिण की दिशा में अग्रसर हो जाओ । मैं तुम्हारे पीछे - पीछे चलूँगा । इडुम्बासुर 'तिरूवाविनन्कुडि' नामक स्थान पर गया । वहाँ उसको आराम करना था और इसलिए उसने पहाड़ों को वहाँ रखा । थोडी देर के बाद वह पहाड़ों को हटाने का काम किया, लेकिन उससे नहीं हो पाया । वहीं निकट एक विल्व वृक्ष के नीचे एक छोटा लडका खड़ा होकर इस दृश्य को देख रहा था । इडुम्बासुर उसके पास दौड़ता गया । लेकिन फिसलकर वह लड़के के पैरों पर गिर कर मर गया । इडुम्बासुर की पत्नी, पति देहांत का समाचार पाकर दौडती आई और मुरुगा की प्रार्थना की यथा -

'करुणामयी भगवान! मेरे पति को बचाओ। उसने आपको ही पहचाना।' उस बच्चे ने भगवान मुरूगा का रूप धारण किया। उसने इडुम्बासुर को जिलाया। उसने ऐसा कहा - 'इन दोनों पहाडों को यही रहने दो। इन पर्वत चरणों की तुम रक्षा करोगे। जिस भांति तुमने अपनी भुजाओं पर इन पहाडों को उठाया है, उसी भांति मेरे भक्त भी 'कावडी' उठायें और मेरा दशर्न करें, वह मुझे भाता है।

आज भी भक्तगण पर्वतचरणों के पास स्थित इडुम्बासुर की मूर्ति को नमन करके पर्वतारोहण करते हैं।

35. परीक्षित महाराज - महाभागवतम्

पाण्ड़वों के मंजला भ्राता अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु है। एक दिन परीक्षित आखेट खेलने के लिए जंगल में गया। बहुत देर तक शिकार करने के बाद उसे प्यास लगी। वे समीका मुनि के आश्रम में आये। समीका मुनि संपूर्ण रूप से ध्यान मग्न थे। परीक्षित उनके पास जाकर पानी की माँग की। मुनि से कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई। वे ध्यानमग्न थे।

परीक्षित ने यह सोच रखा था कि मुनि ने उन्हें नजरंदाज किया। वह मुनि पर आग - बबूला हुआ। वहाँ एक मरा हुआ साँप पड़ा हुआ था। उसने उस साँप को बाण से उठाकर मुनि के कण्ठ में डाल दिया।

थोड़ा समय बीतने के बाद समीका के पुत्र श्रृंगी वहाँ आये, तथा आश्रम में ध्यानमग्न अपने पिता के कंठ में मरे हुए साँप को देखा। वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ तथा शाप दिया - 'सर्पों के राजा तक्षक उस व्यक्ति को सात दिनों में डस दें जिसने मेरे पिता के कंठ में यह साँप डाला।'

तपस्या की पूर्ति के बाद अपने बेटे के द्वारा दिया गया शाप उसे मालूम हुआ । अपने तपोबल से मुनि ने यह जान लिया कि यह काम परीक्षित का था जो श्रीकृष्ण का भक्त था, देश का राजा था तथा ग्लानि से भरा व्यक्ति भी था ।

परीक्षित को इस शाप की सूचना दी गई । उसे बहुत दुःख हुआ तथा अपने किये पर चिन्ता किया । उसने श्रीकृष्ण की प्रार्थना की - 'हे भगवान! मेरे पास केवल सात दिनों के लिए जिन्दा रहूँगा । मुझे मुक्ति प्रदान करो ।'

उसने अपने पुत्र जन्मेजय का राज तिलक करवाया । वह गंगा नदी के किनारे जाकर रहने लगा । बहुत सारे मुनिगण तथा शुकमुनि परीक्षित से मिलने वहाँ आये । शुक मुनि ने राजा से कहा - 'हे राजन्! भगवान का नाम स्मरण तुम्हें मानसिक शांति तथा मुक्ति दोनों प्रदान करेंगे । तुम्हारे साथ यहाँ उपस्थित सभी मुनियों को मैं 'श्रीमद्भागवतम्' की गाथाएँ सुनाऊँगा जो भगवान के अवतारों की गाथाएँ हैं । इन सातों दिनों में इसे बड़ी भक्ति के साथ सुनो ।'

शुक मुनि ने अपने जनक वेदव्यास के द्वारा विरचित 'महाभागवतम्' को सुनाया । परीक्षित ने इन सातों दिनों में तक्षक को अपने तक पहुँचने से बचाने के अनेक उपाय निकाले । सतर्कता बरतने के बाबजूद तक्षक एक कीडे के रूप में फल के अंदर घुसा तथा परीक्षित को मार डाला । मुनि का शाप कभी व्यर्थ नहीं जाता ।

परीक्षित अंतिम दिनों में भगवान के वैभवपूर्ण गाथाँए सुनते हुए शांतिपूर्वक जीवन निताया । भागवतम् के लेखक वेदव्यास के पुत्र शुक मुनि के द्वारा सुनकर और भी संतुष्ट हुए ।

36. मार्कण्डेय : शिव का अनन्य भक्त

मृकंडु और उनकी पत्नी मारुद्वति आदर्श दंपति थे । वे दोनों शिव के भक्त थे । वे जंगल के आश्रम में रहा करते थे। उनकी कोई संतान नहीं थी ।

एक बार वे वाराणसी की यात्रा कर रहे थे । उन्होंने काशी विश्वनाथ तथा विशालाक्षी की प्रार्थना की । मृकंडु ने काशीनाथ के मंदिर के पास उनके अनुग्रह के लिए तपस्या की । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव साक्षात्कार देकर कोई वर माँगने को कहा । उसने शिव से बेटे की माँग की । तब शिव ने कहा - 'तुम्हें सौ वर्ष सामान्य तथा अशिष्ट जीवन बिताने वाला बेटा चाहिए या केवल सोलह वर्ष के लिए शिष्टतापूर्वक व्यवहार करने वाला, मेरे प्रति भक्ति रखने वाला बेटा चाहिए?'

'मुझे ऐसा बेटा चाहिए जो तुम्हारा भक्त हो और जो शिष्ट चरित्र रखता हो ।' शिव ने उन्हें आशीर्वाद दिया - 'तुम्हारी इच्छा की पूर्ति बहुत जल्द ही होगी ।' काशीनाथ की कृपा से उस दम्पत्ति को एक बेटा हुआ । उस पुत्र का नाम मार्कण्डेय रखा गया ।

मार्कण्डेय एक पवित्र, शिष्ट तथा शिव भक्त के रूप में पलने - बढ़ने लगा । उसने वेद तथा अन्य ग्रंथों का गहरा ज्ञान प्राप्त किया । वह बालक सोलह वर्षों का होने ही वाला था । मार्कण्डेय के माँ - पिताजी अपने पुत्र के जीवन के अंतिम दिनों को लेकर चिन्तित थे ।

मार्कण्डेय ने अपने माँ - पिताजी से उनकी चिन्ता का कारण पूछा । उन्होंने शिवजी के द्वारा प्रदत्त वर तथा उसके जीवन के अंतिम चरण का विवरण दिया । मार्कण्डेय ने अपने माँ - पिताजी से ऐसा कहा - 'चिन्ता मत करो! मैं शिव के आशीर्वचन पाकर यम से भिडूँगा, मुझे आशीर्वाद दीजिए ।'

मार्कण्डेय, वाराणसी जाकर काशी विश्वनाथ की प्रार्थना बड़ी श्रद्धा - भक्ति के साथ करने लगा। विश्वनाथ ने मार्कण्डेय को सक्षात्कार देकर कहा - 'चिन्ता मत करो! धर्मराज से डरो मत, मेरी प्रार्थना करते जाओ, मुझे मत छोडो।'

मार्कण्डेय के सोलह वर्ष की पूर्ति पर यमधर्मराज के सेवक प्राणहरण के लिए वारणासी में आये। उस मार्कण्डेय को पहचानने में कठिनाई का अनुभव कर यमदूत वापिस यमधर्मराज के पास जाकर कहा - 'हे स्वामी! हम मार्कण्डेय के पास जा नहीं सके, जब भी हम उनके पास गये, हमें झटके लगे हैं।' तब यमधर्मराज स्वयं गये। यमधर्मराज ने मार्कण्डेय पर 'मृत्युपाश' फेंका। मार्कण्डेय बैठा रहा तथा शिवलिंग को कसकर पकडे हुआ था। वह निरंतर 'ओम नमःशिवाय' का मंत्र जपता गया। शिवजी, लिंग से उभर आये तथा यमदेवता को चेतावनी देने लगा, यथा - 'हे यम! मेरे भक्तों के पास कभी मत जाओ।'

मार्कण्डेय अपने माँ - पिताजी के पास गया। मार्कण्डेय के साथ जो हुआ, उस किस्से को सुनकर वे बहुत संतुष्ट हुए। अगर भगवान के प्रति भक्ति हो तो किसी - किसी के प्रारब्ध / लक्ष्य / गंतव्य भी बदल जाते हैं।

37. वाल्मीकि रामायण

वाल्मीकि, एक भव्य आध्यात्मिक चेता प्राप्त मुनि थे। जितने मुनिगण उनके साथ थे, वे सभी उनका गौरव रखा करते थे।

एक दिन नारद मुनि वाल्मीकि के आश्रम में पधारे। दोनों ने आपस में कुशल - क्षेम के प्रश्नों का आदान - प्रदान किया। वाल्मीकि ने नारद मुनि से पूछा - 'हे महर्षि! आप त्रिलोक संचारी हो। क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति का नाम ले सकते हो जिसका व्यक्तित्व साधुता से भरा है?' नारद

ने उत्तर दिया - 'एक व्यक्ति है श्रीरामचंद्रमूर्ति, अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र ।' वाल्मीकि ने पूछा - 'क्या अब उनके बारे में कह सकते हो?'

नारद ने वाल्मीकि को श्रीरामचद्रंमूर्ति की गाथा सुनाई । वाल्मीकि आनंद विभोर हुए । उन्होंने नारद से कहा - ''हे मुनि! क्या ही भव्य जीवन श्रीराम ने जिया!''

एक दिन वाल्मीकि अपने शिष्य वृन्द के साथ तमसा नदी में स्नान करने के लिए जा रहे थे । उन्होंने एक वृक्ष पर दो क्रौंच पक्षियों को प्रेमक्रीड़ा करते हुए देखा ।

तभी एक बाण जो किसी शिकारी के द्वारा छोड़ा गया था, ने क्रौंच नर पक्षी को मार गिराया । वह पक्षी नीचे गिरकर मर गया । मादा पक्षी विरह वेदना में बहुत रोई थी । उस मृत पक्षी को ले जाने शिकारी आया । वाल्मीकि ने शिकारी से कहा - 'हे शिकारी! तुम भी इसी प्रकार वियोग के शिकार बनोगे । तुम आजीवन जहाँ भी जाओगे, असुरक्षित रहोगे ।'

वाल्मीकि के मुँह से जो शब्द शाप के रूप में निकले, उन शब्दों ने उन्हें मोहित किया । ध्वनि जो शब्द मुनि की अनुकंपा तथा दुःख से अयाचित निकले, उन शब्दों की अंतर्गत शोभा व शांति अवर्णनीय हैं । ये सभी सायास न होकर अनायास ही ध्वनित हुए हैं ।

यह पद्य जो गहरे दुःख तथा अनुकंपा से निकला, वह संस्कृत भाषा का प्रथम पद्य माना जाता है ।

तभी वाल्मीकि के आश्रम में सृष्टिकर्ता ब्रह्म देव का आगमन हुआ । ब्रह्म देव ने वाल्मीकि को आशीर्वाद दिया यथा - 'तुम महान कवि बनोगे ।'

वाल्मीकि ने ब्रह्म देव से पूछा - 'हे भगवान! कृपया यह बताइये कि मुझे क्या लिखना होगा?' ब्रह्म ने कहा - 'तुमने भगवान श्रीरामचंद्रमूर्ति के

बारे में नारद मुनि से बहुत जानकारी ली है । अब श्रीराम की गाथा को काव्य के रूप में लिखो ।' ब्रह्म देव वाल्मीकि के आश्रम से निकल गए ।

वाल्मीकि गहरे ध्यान में लग गये । उन्होंने अपने मानसपटल पर श्रीराम का सारा दिव्य जीवन देखा ।

वाल्मीकि, राम की गाथा 'रामायण' को लिखने लगे । उन्होंने इस गाथा को चौबीस हजार अनुष्टुप छंदों में लिखा जिसमें उनके दुःख भरे क्रौंच पक्षी का किस्सा भी जुड़ा है ।

यही 'रामायण' गाथा है जो आचंद्रार्क जीवित रहता है ।

38. श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ

दशरथ के पुत्र, अयोध्या के राजा श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ, किया । यज्ञ की समाप्ति पर श्रीराम ने यज्ञ अश्व की पूजा की । जैसे ही श्रीराम ने उस अश्व को छुआ, उसने आदमी का रूप लिया । उसने श्रीराम को अपनी गाथा सुनाई, यथा -

'हे स्वामी! इसके पहले जन्म में मैं ब्राह्मण था । आपके आशीर्वचन से मैं ने अनेकानेक दान किये तथा अच्छा नाम भी कमाया । मेरी कीर्ति बहुत बढ़ भी गई थी । लेकिन उस यश ने मेरे अंदर अहंकार को बढ़ा दिया । मैं ने कोई ऐसा यज्ञ करना चाहता था जो मेरी कीर्ति और बढ़ा सके । उस यज्ञ को मैं ने लोक हित के लिए करना नहीं चाहा बल्कि मेरे यश तथा कीर्ति को बढाने के लिए ही करना चाहा ।'

जब मैं ने यज्ञ करना प्रारंभ किया, तब दूर्वास महामुनि वहाँ आये । एक सेवक ने मुझे उनके आगमन की सूचना दी । लेकिन अहंकार के कारण मैं ने ऐसा कहा - 'महर्षि के आने से क्या हुआ? मैं यहाँ बडा यज्ञ कर रहा हूँ, वे मुझ से श्रेष्ठ नहीं हैं, उन्हें आने दो!'

दूर्वास बहुत क्रुद्ध हुए क्योंकि उनके सादर पूर्वक स्वागत के लिए कोई नहीं आया था । वे मेरे पास आकर मुझे इस प्रकार शाप दिया -

'दान देते तुम्हारा अहंकार बढ़ गया है । मैं महान मुनि हूँ, लेकिन तुमने मेरा अपमान किया । इस पाप के लिए तुम अश्व में बदल जाओ ।'

मैं बहुत डर गया था, उनके चरणों पर गिरकर प्रार्थना की - 'मैं अपने अहंकार से अंधा हो गया । दया करके मुझे क्षमा करो ।' लेकिन दूर्वास ने कहा - 'मैं शाप देता हूँ, तो उसे कभी वापस ले नहीं सकता । तुम श्रीराम के भक्त हो और इसलिए जब वे अश्वमेध यज्ञ करेंगे तब तुम्हें छुएँगे और तब जाकर तुम्हारा नर शरीर तुम्हें वापस मिल जायेगा ।'

'यही मेरी गाथा है' - अश्व ने इस किस्से को सुनाकर आदमी का रूप धारण किया । श्रीरामचंद्रमूर्ति के प्रति उसके जो भक्ति थी, वह उसको आदमी का रूप प्राप्त करने के लिए मदद आई ।

39. महान कवि कम्बन

चोल राज्य के एक छोटे गाँव तिरुमुंडूर में उव्वच्चन नामक मंदिर के पूजारी के घर एक दिन एक गर्भवती आई ।

'मैं कम्बम का स्थिरवासी हूँ । उस गाँव में दंगों के पैदा होने के कारण, लोग प्राणों के बचाव के लिए भाग - दौड कर रहे हैं । मुझे भी वहाँ से पलायन करना पडा । कृपया आपके घर में मुझे रहने के लिए जगह दीजिए, मैं गर्भवती हूँ ।'

कृपालु पुजारी ने स्वीकृति दी तथा उससे कहा - 'हे माँ! आप जितने दिनों के लिए रहना चाहती हो, उतने दिनों के लिए निस्संदेहपूर्वक रह सकती हो ।'

कुछ समय बाद, उस स्त्री ने एक बेटे को जन्म दिया। उस बच्चे का नाम कम्बन रखा गया क्योंकि वह स्त्री कम्बम् से आई थी।

कम्बन की आयु सात साल की हुई। उस गाँव के एक उदार व्यक्ति सदायप्पा ने माँ - बेटे की परवरिश में सहायता की। कम्बन को कनकराय के पास विद्याभ्यास के लिए भेजा गया।

एक बार गाँव के मंदिर में वार्षिकोत्सव हो रहा था। कम्बन ने पूजा सामग्री के प्रबंधन करने में मंदिर के पुजारी की सहायता की।

अभिषेक समर्पण का समय आया। पुजारी ने कम्बन से देवी माँ के सारे आभूषण निकालकर उनकी अभिषेक के लिए तैयार रखने को कहा।

अभिषेक समर्पण के दौरान कम्बन को कुछ असहनीय तथा चक्कर की स्थिति पैदा हुई। उसने देवी माँ की प्रार्थना की - 'हे माँ! मुझे शक्ति दो, मुझपर कृपा करो।'

देवी माँ ने उन पर आशीर्वाद बरसाया! उसने ऐसा कहा - 'हे वत्स! तुम ठीक हो जाओगे! तुम एक महान कवि बनोगे।'

एक दिन कम्बन अपने यजमान की खेती की रखवाली कर रहे थे। एक अश्व उसमें घुमकर पौधों को चबा-खा रहा था। कम्बन ने उस अश्व को वहाँ से भगाने के लिए जोर से चिल्लाया। उसके शब्द जो निकले, वे सभी पद्य के रूप में ही निकले।

'हे देवी माँ काली! उस अश्व के प्राण हर लो जिसने कलिंगराय के फसल को खा लिया।' उसी क्षण को अश्व नीचे गिरकर मर गया।

तभी अश्व के स्वामी तथा सदायप्पा वहाँ पहुँचे। वे मृत घोडे को देखकर बहुत व्याकुल हुए। लेकिन आश्चर्य की बात है! कम्बन के पद्य

को सुनकर घोड़ा मर गया क्या? उनको विश्वास नहीं हुआ । उन्होंने सोचा कि कम्बन ने पत्थर मारकर उसे मारा होगा । लेकिन कम्बन ने कहा - 'नहीं स्वामी? मैं ने उस पर पत्थर नहीं मारा, मैं ने केवल उसे डाँटा! वही पद्य का रूप धारण किया ।' उन्होंने सोचा - 'यह पद्य देवी माँ के कटाक्ष से इनके मुँह से आया होगा ।'

अश्व के स्वामी ने प्रत्युत्तर दिया - 'अगर यह सच है तो मैं फसल का नष्ट भर दूँगा । कम्बन एक और पद्य को पढ़कर मेरे घोडे को जिलाइए ।'

कम्बन ने देवी माँ पर एक पद्य की रचना करके यह प्रार्थना की कि वह घोड़े को जिलाएँ । और आश्चर्य की बात! मृत घोडे में चेतना जगी तथा वह पुनर्जीवित होकर खड़ा हो गया ।

सभी लोगों ने यह स्वीकार किया कि कम्बन ने निश्चित ही देवी माँ का अनुग्रह प्राप्त कर लिया है ।

कम्बन ने 'तिरुक्कुरै' नामक ग्रंथ की रचना की । उन्होंने वाल्मीकि कृत रामायण को पढ़ा । वे पढ़कर परवश हो गए थे ।

एक दिन सदायप्पा की ओर से कम्बन को एक पत्र मिला । उसमें ऐसा लिखा हुआ था - 'राजा कुलोत्तुंग चोल ने मुझे तुम्हें उनके भवन में लाने के लिए लिखा है ।'

इससे पता चला कि कम्बन कितना कीर्ति प्रतिष्ठित कवि था ।

सदायप्पा, कम्बन को राजा के दरबार में ले गया । कम्बन की काव्य प्रतिभा को देखने के बाद, राजा ने उनको अपना दरबारी कवि बनाया । दरबारी कवि बनने के बाद, राजा ने कम्बन को सम्मानपूर्वक अनेक प्रकार के दिव्य - भव्य भेंट दिये ।

एक दिन राजा ने कम्बन तथा ओट्टक्कूत्तर, नामक एक और कवि का संबोधन करते हुए कहा - 'हे कवि श्रेष्ठों! मुझे बलवती इच्छा हो रही है कि आप वाल्मीकि विरचित रामायण को तमिल में भी लिखें। कृपया मेरी बलवती इच्छा की पूर्ति करो।'

ओट्टकूत्तर एक प्रतिष्ठित कवि थे। इसके बावजूद कम्बन के प्रति राजा को आधिक सम्मान का भाव था। ओट्टकूत्तर, कम्बन से पहले प्रतिष्ठित कवि माने जाते थे। वे कम्बन के प्रवर थे। लेकिन राजा ने कम्बन को ओट्टकूत्तर का समकक्षी बनाया। इसलिए ओट्टकूत्तर कम्बन से जलता था। उसे यह बात असहनीय बन गई थी।

दो महीनों के बाद राजा ने दोनों कवियों से पूछा - 'रामायण का तमिल में अनुवाद कहाँ तक हुआ?' ओट्टकूत्तर ने कहा - 'मुझसे तो रामायण का थोड़ा ही हिस्सा अनुवाद करने को हुआ।' कम्बन ने कहा - 'हे राजन्! मैं ने श्रीराम तथा उनकी वानर सेना के साथ समुद्र को पार करने तक की गाथा का अनुवाद किया।' ओट्टकूत्तर ने सोच रखा था कि कम्बन ने अभी तक प्रारंभ भी नहीं किया होगा। उसने कम्बन से कहा - 'हे कम्बन! तुमने जो अनुवाद किया, उसके अंतिम पद्य को सुनाओ।'

मुझ पर सरस्वती देवी का कटाक्ष होते सब कुछ हो जायेगा। राजा ने आश्चर्यपूर्वक कहा - 'हा! हा! कितना अच्छा पद्य है।' ओट्टकूत्तर ने सूचना दी - 'चूँकि कम्बन ने ज्ञानपूर्वक इतनी रचना की, इसलिए उनको अपना काम पूरा करने दीजिए।'

राजा ने प्रचार करवाया - 'श्रीरंगम के मंदिर में भगवान के सामने प्रवरों एवं कवियों के सामने रामायण का पठन होगा।'

कम्बन, श्रीरंगम गये। वहाँ, उनकी भेंट आचार्य श्रीनाथमुनि नामक श्रीवैष्णव से हुई। कम्बन ने उनसे अपने आगमन का विवरण दिया।

तब आचार्य ने आशीर्वाद देते हुए कहा - 'मैं प्रसन्न हुआ हूँ क्योंकि तुमने अपनी रचना का नामकरण 'रामावतार' कह कर किया । श्रेष्ठ व मान्य वैष्णवों के समक्ष सहस्र स्तंभो के प्रधान कक्ष में तुमको उसका पठन करना होगा ।'

कम्बन ने श्रीरंगम मंदिर के सहस्र स्तंभो वाले प्रधान कक्ष में रामावतार का पठन प्रारंभ किया । नाथमुनि वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने कहा - 'प्रथम पद्य ही एक अमूल्य रत्न निकला! सदयप्पा ने तुम्हारी बहुत सहायता की होगी । फिर भी एक सौ पद्यों की पूर्ति में हर बार उनका नाम तुमने लिया, यह उचित नहीं है । एक सहस्र पद्यों के बाद उनका नाम लेना ठीक था ।'

चिदम्बरम् में, जब कम्बन तमिल भाषा में रामायण का पठन कर रहे थे, तब मंदिर के, प्रधान अर्चक के बेटे को एक नाग ने डस लिया था । तब कम्बन ने 'रामावतार' के नागपाश अध्याय का पठन किया । नाग ने वापस आकर, बच्चे के शरीर से विष को निकालकर लौट गया । बच्चा ठीक हो गया ।

'रामावतार' का पठन एवं कम्बन की भक्ति को पहचानने के लिए इनकी जानकारी आवश्यक है । यही उनकी महानता भी है ।

40. अगस्त्य मुनि के द्वारा रावणासुर का हार

असुरों के राजा रावण लंका के राजा थे । एक दिन उनके मस्तिष्क में एक क्रूर इच्छा पैदा हुई ।

'मैं ने सभी देवताओं पर जीत पाई । लेकिन भारत देश के दक्षिण भाग पर मेरा अधिकार नहीं जमा है । मुझे उस भू-भाग को जीतकर अपने अधीन ले आना होगा ।'

कुछेक गुप्तचरों के साथ रावणासुर दक्षिण भारत की ओर गया । चढ़ाई करने से पहले उसको उस प्रांत के बारे में जानकारी प्राप्त करनी थी ।

वह दक्षिण भारत के पोदिगै पहाड पर गया । अगस्त्य महामुनि वहाँ निवास बनाये हुए थे । रावणासुर उनसे जा मिले । मिलन के तुरंत बाद अगस्त्य महामुनि ने रावणासुर के कुत्सित मन को पहचान लिया ।

रावण ने मुनि की वन्दना की - 'अगस्त्य मुनि को मेरा प्रणाम' मुनि ने उनको उत्तर दिया - 'शिव के अद्वितीय भक्त जिसने तीन सौ लाख वर्षों के लिए जीने का वर प्राप्त किया, ऐसे श्रेष्ठ लंकापति को मेरा स्वागत है । अंदर आइए ।'

मुनि ने रावणासुर से पूछा - 'हे रावण! कौन-सी इच्छा तुम्हें इस पृथ्वी पर ले आई है?' रावण ने सच्ची बात कही - 'हे मुनि! मैं इस भू-भाग को जीतकर अपने अधीन ले आना चाहता हूँ ।' 'मैं इस प्रांत की स्थिति - गतियों का अध्ययन करने आया हूँ ।' अगस्त्य ने रावण से पूछा - 'तुम रुद्रवीणा बजाने में प्रवीण हो ना?' 'जी हाँ' - रावण ने कहा । अगस्त्य ने पुनः रावण से कहा - 'तब तो तुम्हें मेरे साथ वीणावादन की प्रतियोगिता में भाग लेना होगा । अगर तुम मुझे हराओगे, तो तुम्हारी इच्छा की पूर्ति भी हो जाएगी ।' रावण ने उत्तर दिया - 'आपका प्रस्ताव मुझे मंजूर है ।'

यह समाचार पूरे देश में फैल गई । हजारों की संख्या में लोग प्रतियोगिता को देखने आए । रावण ने पहले अगस्त्य को वीणा बजाने के लिए कहा, यथा - 'आप पहले वीणा बजाइये ताकि उसकी सुरीली धुन में मेरा मन गल जाये ।' अगस्त्य ने पूछा - 'लेकिन लोग कैसे जान पायेंगे कि मेरे संगीत को सुनकर तेरा मन स्पंदित हुआ?' मैं इसे इतनी

सुरीली आवाज में बजाऊँगा, कि हमारे सामने स्थित पोदिगल पर्वत पिघल कर आँसू बहायेगा ।'

अगस्त्य ने वीणा बजाना प्रारंभ किया । आश्चर्य की बात! पोदिगै पर्वत धीरे - धीरे पिघलने लगा । रावणासुर भी अचंभा रह गये । उसे भी पता था कि जितना अगस्त्य ने पाया, उतना वह पा नहीं पायेगा । वह नतमस्तक होकर बैठ गया ।

अपनी हार की स्वीकार करते हुए रावण ने कहा - 'हे महामुनि! मैं अपना हार मानता हूँ । वीणा बजाने में आप जितने प्रवीण हैं, उतना मैं नहीं हूँ । जो भू-भाग आपके अधीन है, उसे हडपने का साहस मैं नहीं करूँगा ।'

अगस्त्य मुनि से अनुमति लेकर रावणासुर लंका वापस लौट गया ।

41. सती सुभद्रा

चित्रसेन नामक एक गंधर्व आकाश मार्ग से जा रहा था । उसने पान को चबाने के बाद थूक दिया । वह थूक गालव्य नामक आश्रमवासी की अंजली में आ गिरी थी जो सूर्य भगवान को संध्यावंदन समर्पित कर रहा था । जैसे ही थूक आ गिरा, गालव्य तपस्वी बहुत क्रुद्ध हुए । उसने आकाशमार्ग में जाते हुए गंधर्व को देखा । उसने गंधर्व को शाप देना चाहा लेकिन उसने शाप इस उद्देश्य से नहीं दिया क्योंकि शाप देने से वह अपनी समस्त तपोशक्ति खो बैठेगा । इसलिए उसने गंधर्व के कुकृत्य का विवरण कृष्ण को देकर, उन्हीं से शाप दिलवाना चाहा ।

चित्रसेन के कुकृत्य को श्रीकृष्ण को बताने के लिए गालव्य, द्वारका गया । श्रीकृष्ण ने तपस्वी से पूछा - 'हे मुनि श्रेष्ठ! परेशान मत होओ । कल शाम को सूर्यास्त से पहले ही, मैं उसे मार दूँगा ।'

इस बीच नारद महामुनि चित्रसेन से मिले तथा ऐसा कहा - 'हे चित्रसेन! श्रीकृष्ण ने गालव्य तपस्वी को वचन दी है कि वे कल शाम को

सूरज के ढ़लने से पहले तुम्हें मार देंगे ।' चित्रसेन भयभीत हुए । उन्होंने नारद से पूछा यथा - 'हे मुनिश्रेष्ठ! मुझे इस दण्ड़ से बचने के लिए कोई उपाय है क्या?' नारद महर्षि ने उसे इंद्र, यम, ब्रह्मदेव तथा शिव से संपर्क करने के लिए कहा ।

चित्रसेन ने नारद के वचनों का पालन किया । लेकिन सभी ने यही कहा कि यह प्रतिज्ञा तो स्वयं श्रीकृष्ण की है और यह उनके द्वारा गालव्य जैसे तपस्वी को दिया हुआ वचन है ।

चित्रसेन पुनः नारद महर्षि से जा मिले । महर्षि ने उनसे ऐसा कहा - 'हे चित्रसेन, भयभीत मत होओ । सुभद्रा जो श्रीकृष्ण की बहन तथा अर्जुन की पत्नी है, वह यमुना नदी में स्नान करने के लिए आयेगी । नदी के कूल पर जो भी दीन दुःखी को देखती है, सुभद्रा उनकी रक्षा के लिए तत्पर हो जाती है । एक बात मेरी याद रखो । जब तक वह तुम्हारी रक्षा के लिए वचन नहीं देती, तब तक उसे अपने दुःख का पता होने नहीं दो ।'

जब सुभद्रा स्नान करके नदी के कूल पर आई, तब उसने चित्रसेन को जोर से रोते हुए देखा । वह ऐसा कह रहा था - 'यहाँ मेरी सहायता करनेवाला कोई नहीं है क्या? अगर नहीं हो, तो अपने आप को नदी में डुबाने के अलावा मेरे पास कोई दूसरा चारा नहीं है ।'

सुभद्रा उस के पास जाकर पूछी - 'हे आर्य! तुम कौन हो? आपका दुःख क्या है! मुझे बताइए । मैं तुम्हारी मदद करुँगी ।'

चित्रसेन ने ऐसा कहा 'माता! अगर आप वचन देंगी कि आप मेरी मदद करोगी, तब मैं आपको अपना कष्ट सुनाऊँगा ।' - सुभद्रा ने उत्तर दिया - 'मैं वादा करती हूँ, मेरे पति अर्जुन हैं, पांडवों के भ्राता । श्रीकृष्ण तो मेरे भ्राता ही हैं । चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारे सारे दर्द को दूर करुँगी ।'

चित्रसेन ने अपने दुःख को सुनाया । सुभद्रा ने एक पल के लिए सोचा तथा ऐसा कहा - 'चिन्ता मत करो! अर्जुन मेरे पति हैं । वे मेरे वचन को निश्चित ही बनाये रखेंगे ।'

वह घर लौटी तथा अपने पति अर्जुन को अपने वचन के बारे में बताते हुए चित्रसेन की गाथा सुनाई । अर्जुन ने यह उत्तर दिया कि चित्रसेन के जीवन को बचाने के लिए, वह भगवान श्रीकृष्ण से भी भिडने को तैयार रहेंगे ।

श्रीकृष्ण गंधर्व को मारने के पक्ष में थे तथा अर्जुन उसे बचाने के पक्ष में थे । इन दोनों को अपने - अपने वचन से बद्ध रहने के लिए, युद्ध लड़ना अनिवार्य हो गया । युद्ध प्रारंभ हुआ । एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई जब श्रीकृष्ण को अपना सुदर्शन चक्र तथा अर्जुन को पाशुपतास्त्र का प्रयोग करना अनिवार्य हो गया था । ये दोनों ही नाशवान अस्त्र थे ।

शिवजी को जब इस युद्ध का पता चला, तब वे उन दोनों के बीच आ खडे हुए । उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा - 'हे श्रीकृष्ण! अर्जुन तुम्हारा प्रिय भक्त है । क्या तुम्हारे भक्त को अपने वचन से बद्ध रहने के लिए आप अवसर नहीं दोगे?' श्रीकृष्ण ने शिव की बात मानकर युद्ध रोक दिया । तपस्वी ने ऐसा कहा - 'तुम दोनों, कृष्ण और अर्जुन ने चित्रसेन जिसने मेरे प्रति पाप किया, उसका पक्ष लेने को हुए । मैं अपनी तपोशक्ति से चित्रसेन को राख बना दूँगा ।' ऐसा कहते हुए उसने कमंडल से जल लेकर उसे शाप देते हुए जल छिडकने लगा ।

अचानक सुभद्रा दोनों के बीच आकर खड़ी हुई तथा शाप को निर्वीय करने के प्रयास में ऐसा कहा - 'अगर मैं पतिव्रता हूँ, अपने पति

को छोड़कर किसी मर्द को कम-से-कम मन से भी नहीं छुआ हो, तो यह मंत्रपूत जल चित्रसेन पर नहीं लगे ।'

तुरंत ही गालव्य के हाथ से जल गायब हो गया । गालव्य बड़ी निराशा के साथ वापस लौट गया ।

यही एक पतिव्रता की शक्ति होती है ।

42. इल्वला तथा वातापी (दुष्ट राक्षस)

इल्वला तथा वातापी दो राक्षस भाई थे । उन्हें यतियों तथा तपस्वियों से गहरा द्वेश था क्योंकि किसी तपस्वी ने उसे पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद नहीं दिया था । उन्होंने अपने गुप्त शक्तियों से छल के साथ तपस्वियों एवं साधु - संयासियों को मार डालते थे ।

दोनों असुर भाई, भक्तों की भांति आदमी का भेष धारण करते थे तथा किसी साधु या तपस्वी को खाने पर बुलाते थे । इल्वला, बाद में अपने भाई वातापी को एक बकरे के रूप में परिणत कर देता था । इल्वला उस बकरी को मारता था तथा उसके माँस से भांति - भांति के व्यंजन बनाकर, आगंतुक यती या तपस्वी को खिलाता था । अतिथि जब खाना खा जाता, तब इल्वला अपने भाई वातापी को बुलाता था - 'वातापी, बाहर निकलो ।'

वातापी, आगंतुक के पेट को चीरकर बकरे के रूप में बाहर निकलता था । दोनों भाई इस प्रकार का खेल अपनी गुप्त शक्तियों के कारण खेला करते थे । बकरा फिर वातापी का रूप धारण कर जाता था । लेकिन आया हुआ अतिथि मर जाता था ।

इस रूप में ये दोनों असुर भाई अतिथियों के रूप में आये साधुओं तथा तपस्वियों को मार रहे थे । अगस्त्य महामुनि को इनके कुकृत्यों का पता चला । मुनि ने दोनों असुरों को मारना चाहा ।

अगस्त्य महामुनि असुर भाईयों के घर आये । बिन बुलाये आये हुए अतिथि को देखकर दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने मुनि का स्वागत ऐसा किया - 'आप के चरणों के स्पर्श से हमारा मकान पवित्र हो गया । आज आपको खाना खिलाने का सौभाग्य हमें दिलाइए!' अगस्त्य ने उनसे कहा कि मैं नदी में स्नान करके आऊँगा ।

इस बीच इल्वला ने हर समय की भांति वातापी को बकरा में, तदुपरांत उसके माँस से नाना प्रकार के व्यंजन में परिणत कर दिया ।

अगस्त्य के घर आने पर वही भोजन परोसा गया । अतिथि खाना खाने के बाद अपने पेट के अंदर के असुर को शाप दिया । अगस्त्य ने कहा - 'आप कितना भी बुलाओ, कोई चारा नहीं । मैं ने ऐसा भोजन नहीं खाया । आपका आतिथ्य भी अच्छा रहा ।'

इल्वला ने सामान्य तरीके में बुलाया - 'वातापी बाहर चले आओ ।' अगस्त्य ने उससे कहा - 'तुम जितना भी बुलाओ, वातापी कैसे आयेगा? वह मेरे पेट में पच गया है ।' इल्वला बहुत क्रुद्ध हुआ तथा अगस्त्य को मारने के लिए तत्पर हुआ । अगस्त्य ने अपनी तपोशक्ति के बल से इल्वला को मार डाला । इस प्रकार दोनों असुर भाई मारे गये ।

43. मूर्तिभूत दयावानः वल्ललार

बहुत वर्ष पहले वडलार नामक एक गाँव में वल्ललार, व्याख्यान दे रहे थे । वहाँ पहुँचने के लिए एक भू-स्वामी बैलगाडी पर सफ़र कर रहा था । जमींदार ने संचालक से बैलगाड़ी को तेज हाँकने के लिए कहा । थोड़ी दूर सफर करने के बाद, वे एक नदी के पास पहुँचे । संचालक ने कहा - 'बैलों को थोड़ा पानी पीने देंगे । वे बहुत प्यासे हैं ।' लेकिन जमींदार ने कहा - 'नहीं, उसके बारे में बाद में सोचेंगे, गाड़ी को तेज चलाओ ।'

थोड़ी दूर और जाने के बाद संचालक ने कहा - 'हे स्वामी! दोनों बल बहुत थक गये हैं । किसी पेड के पास थोड़ी देर आराम करके फिर चलेंगे ।' भूस्वामी ने कहा - 'हमको समय व्यर्थ गँवाना नहीं है । हमको स्वामी जी से आज ही मिलना है तथा आज ही रात से पहले घर वापस लौटना है । जल्दी चलो ।'

सभी वडलूर पहुँचे । वल्ललार स्वामी व्याख्यान दे रहे थे । जमींदार ने विनयपूर्वक स्वामीजी को नमन किया तथा उनके सामने बैठ गया ।

बैल गाड़ी के संचालक ने दोनों बैलों को वल्ललार के घर के पिछवाडे में ले गया । स्वामीजी वल्ललार उनकी ओर देख रहे थे । स्वामीजी अचानक अपनी जगह से उठे तथा वहाँ पहुँचे जहाँ बैल खडे थे । सामान्यतः स्वामीजी, व्याख्यान देते समय बीच में कभी उठते नहीं थे, इसलिए सभी आश्चर्यचकित हुए । वहाँ उपस्थित सभी श्रोता स्वामीजी का अनुसरण कर घर के पिछवाड़े की ओर गये ।

स्वामीजी ने बैलों को थोडा सहलाते हुए कहा - 'हे बैलों! आपको मेरे कारण कष्ट उठाना पडा । आप बहुत प्यासे व थके हुए थे, आपने कष्ट उठाया ।' स्वामीजी ने आँसू बहाये ।

जमींदार ने स्वामीजी से कहा - 'हे स्वामीजी! मूझे क्षमा कीजिए मैं ही इनके कष्टों का कारक हूँ । आप तो मुरझाते फूल के कष्ट को भी देख नहीं सकते हो ।' सजीव प्राणियों के कष्ट आप कैसे ही सहन कर पाओगे? मैं ने अज्ञानवश गाड़ी के संचालक से कहा कि वह बैलों को तेज हाँकें ।'

स्वामीजी ने तुरंत ही बैलों के लिए घास का बंदोबस्त कराया । वे अपने स्थान पर जाकर पुनः अपने व्याख्यान को आगे बढ़ाया । स्वामीजी वल्ललार ने कहा -

'भगवान सभी सजीव प्राणियों में बसता है । किसी प्राणी को हिंसा पहुँचाना, भगवान को हिंसा पहुँचाने के समान है । इसलिए आप सभी सहृदयी बनकर सभी सजीव प्राणियों पर दया दिखाइए । वही बात श्रीकृष्ण ने भगवद्‌गीता में स्पष्ट किया है ।'

44. नमकहराम कुत्ता

एक जंगल में अग्रप्रभा नामक मुनि एक छोटे कुटीर में रहा करते थे । उनके साथ जंगली जानवर भी किसी को नुकसान पहुँचाये बिना रहा करते थे । उसी आश्राम में एक पालतू कुत्ता भी रहता था ।

एक दिन कुत्ता जंगल के अंदर चला गया । उसे एक चीता पीछा करने लगा । किसी प्रकार वह कुत्ता भाग निकलकर मुनि के आश्रम में पहुँचा । उसने मुनि से प्रार्थना की - 'हे मुनि! मेरी रक्षा करो, एक चीता मुझे मारने के लिए मेरा पीछा कर रहा है ।'

मुनि ने उस कुत्ते को बचाने के लिए उस कुत्ते को अपने तपोबल से चीता के रूप में बदल दिया, तथा उससे कहा - 'अब तुम सुरक्षित हो ना?'

एक और चीता को पाकर, वह चीता जंगल में वापस लौट गया । जो चीता नये सिरे से रूप धारण किया वह जंगल में आराम से बिना भय के घूमने लगी ।

इस चीता ने पुनः मुनि के पास जाकर प्रार्थना की कि वे उसे बाघ में बदल दें । एक जंगली शेर इस शेर को देखकर वापस चला गया ।

एक दिन यह पालतू कुत्ता - बाघ में परिणत हुआ, उसने एक बडे हाथी को अपनी ओर आते हुए देखा । भय खाकर वह पुनः मुनि के पास गया ।

मुनि ने फ़िर से बाघ को हाथी में बदल दिया । जंगल के सभी जानवर इस कुत्ता - शेर से भय खाने लगे । उसके कारण कुत्ता - शेर

बहुत गर्वीला जानवर बन गया । उसके मन में एक बुरी सोच पनपी । वह ऐसा था - 'मैं अब इस जंगल का राजा हूँ । मुनि के पास तपोशक्ति है । वह मुनि, मुझ जैसे किसी अन्य प्राणी को भी मेरी तरह शेर में बदलने की शक्ति रखता है । तब मेरा शत्रु सामने आ जायेगा । उसके कारण मैं हीन हो जाऊँगा । मुझे अपने स्थान को बनाये रखने के लिए, उस मुनि को मार डालना है ।'

मुनि ने अपने तपोबल से शेर की कुत्सित सोच को जान लिया था । मुनि ने शेर को पुनः कुत्ते के रूप में यह कहते हुए बदल दिया - 'तुम! नमक हरामी हो, तुम को कुत्ते के अलावा और कोई शरीर जंचता नहीं है ।'

45. गार्गिमुखी राक्षसी

गार्गिमुखी एक राक्षसी थी । वह तिरुप्पुरम् कुंड्रम के पास, एक गुफ़ा में रहा करती थी । कोई व्यक्ति शिवजी की प्रार्थना करता, तो उसे वह अपनी गुफ़ा में कैद कर देती थी । वह, एक हजार ऐसे व्यक्तियों को कैद कर एक झटक में काली माता को बलि देना चाह रही थी । उसने अब तक नौ हजार निन्यानब्बे व्यक्तियों को बंदी बनाया था । उसको केवल एक व्यक्ति चाहिए था, एक हजार की संख्या को बनाने के लिए ।

एक दिन एक महान शिव भक्त उस गुफ़ा के निकट स्थित नदी में स्नान करके एक पेड के नीचे शिव की आराधना में लग गया था ।

उसी समय मंद गति से हवा का बहना प्रारंभ हुआ । पेड़ से पत्ते झडने लगे । एक पत्ता नदी के कूल पर गिरा और तुरंत एक चिडिया बन गया । दूसरा पत्ता नदी में गिरा और वह पत्ता मछली में बदला ।

चिडिया, मछली को नदी से बाहर ले आने का प्रयास कर रही थी जबकि मछली बाहर निकलना नहीं चाह रही थी ।

नक्कीरन जो चिडिया तथा मछली के बीच के संघर्ष को देख रहा था, अपनी जगह से उठकर, चिडिया का पीछा करने लगा और इस प्रकार मछली के प्राणों की रक्षा कर रहा था ।

गार्गिमुखी जो इस सब को देख रही थी, ने नक्कीरन को बंदी बना दिया यह कहते हुए कि उसने आधी पूजा को छाड़ेकर अपनी जगह से उठ गया था । दानवी बहुत संतुष्ट हो गई थी क्योंकि उसे कलिका देवी को बलि चढ़ाने के लिए एक हजार साधु मिल गये हैं ।

दानवी के कारावास में बंद सभी लोगों ने नक्कीरन से यह कहा था कि दानवी ने इन सभी को कुत्सित मति से कालिकादेवी को बलि चढ़ाने के लिए कैद किया है । सभी लोग इसके बारे में सोचकर भय खाने लगे ।

नक्कीरन ने सभी से कहा कि वे शांत रहें और भय कभी न खायें । उसके बाद उसने भगवान मुरुगा की स्तुति करने लगा । मुरुगा, जो भक्तों के पाश में बंदा रहता है, वह कारावास को खोलने के लिए एक बिजली की कडक को भेजा । उस कडक ने गुफ़ा के द्वार को खोल दिया । सभी साधु मुक्त हो गए ।

दानवी को झटका - जैसा पहुँचा । भगवान मुरुगा ने वहाँ आकर दानवी के हृदय को चीरकर उसे मार दिया ।

सभी साधु - यति ने संतुष्ट होकर भगवान मुरुगा की स्तुति की तथा अपने-अपने रास्ते पकडकर घर वापिस लौट गये ।

46. चतुर चिरकारी

महान मुनियों में गौतम मुनि एक थे । उनके दस हजार शिष्य थे । नित्यप्रति वह साधु सभी शिष्यों को भोजन देता था तथा उन सबको

रहने के लिए आवास भी दिया । लेकिन वह बड़ा क्रोधी था । हर छोटी चीज पर आग उगलता था ।

एक बार उसकी पत्नी अहल्या ने एक छोटी - सी गलती की थी । गौतम मुनि आग - बबूला हो उठे । उन्होंने अपने बेटे चिरकारी को बुलाकर आदेश दिया - 'कुटीर के अंदर जाकर तुम्हारी माँ को मार दो । उस जीने का अधिकार नहीं है ।' इस प्रकार का आदेश देकर गौतम मुनि वहाँ से निकल गये ।

चिरकारी विवेक संपन्न व्यक्ति था । वह हर एक काम को करने से पहले बहुत बार सोचता था । अब भी सोचने लगा, यथा - 'औरत को मारना अपराध है । अपनी ही माता को मारना घोर पाप है । लेकिन मैं अपने पिताजी का आदेश भी कैसे धिक्कारुँ? यह भी बड़ा पाप है ।'

वह संशय में पड गया । उसने अपने पिताजी की आज्ञा का पालन करने में सप्ताह से भी अधिक समय लिया । इसके दौरान गौतम मुनि भी ध्यान में बैठकर अपने आदेश के बारे में सोचने लगे । उन्होंने सोचा - मैं ने एक छोटे से कारण के लिए अपनी पत्नी को मारने का आदेश दिया । वह जानता था कि चिरकारी अविवेकी न होकर सही उपाय ढूँढेगा । गौतम कुटीर के अंदर बड़ी व्यथा के साथ गया ।

गौतम ने चिरकारी को बुलाया । चिरकारी बाहर निकलकर अपने पिताजी से क्षमा माँगते हुए कहा - मैं ने आपके आदेश का पालन नहीं किया क्यों कि मुझे अभी तक यह पता नहीं चला कि आपके आदेश का पालन करना सही है या गलत है ।

गौतम मुनि ने अपने बेटे से आलिंगन किया ।

मुनि ने कहा - 'मैं बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने मेरे आदेश का पालन नहीं किया । अगर तुमने उसे मार दिया होता, तो मैं भी अब तक

मर गया होता! तुमने दो प्राणों को बचाया । धन्यवाद हे वत्स!' गौतम मुनि ने बाद में अपनी पत्नी अहल्या से कहा - 'चिरकारी जैसे पुत्र को जन्म देकर तुम धन्य बन गयी हो । वह बड़ा विवेकवान है और कभी किसी कार्य में जल्दबाजी नहीं बरतता ।'

47. राजा नीलन

राजा नीलन चोल सम्राट का अंशदार्य शासक था ।

एक बार मंदिर में नीलन एक नृत्यांगना से आकृष्ट हुआ । वह एक सुंदर स्त्री थी, साथ-ही-साथ एक नृत्यांगना भी । वह एक चिकित्सक की दत्त पुत्री थी । उस ने बच्ची को पानी की टंकी के पास पाया । वह बच्ची अपने हाथ में कमल का फूल भी पकडी हुई थी । वैद्य ने उसकी परवरिश की तथा उसका नाम कुमुदवल्ली रखा ।

नीलन राजा ने, वैद्य के पास एक व्यक्ति को भेजकर कुमुदवल्ली का हाथ माँगा । कुमुदवल्ली ने भी विवाह के लिए सहमति दी बशर्ते नीलन से यह कहा कि उसको विवाह से पहले एक वर्ष भर के लिए हर दिन एक हजार आठ लोगों को भोजन खिलानी है । राजा ने सहमति दी ।

राजा ने कुमुदवल्ली की बात को मान्यता दी तथा उसके शर्त का पालन भी किया । कुमुदवल्ली तथा नीलन का विवाह संपन्न हुआ । राजा ने तिरुनावैयानम् के भगवान श्रीमहाविष्णु की पूजा यथातथ करने लगा । इसके साथ - साथ वह एक हजार आठ व्यक्तियों को भोजन भी खिला रहा था । वह हर दिन तुलसी माला पहनता था तथा माथे पर ऊर्ध्वपुण्ड्र भी लगा लेता था ।

इसके दौरान उसका पूरा खजाना खाली हो गया । नीलन अपने सम्राट को वार्षिक वित्तीय सहायता भी दे नहीं पाया । इसके कारण राजा को तिरुनावैयानम् के भगवान विष्णु मंदिर में बंदी बनाकर रखा गया ।

उसे न खाना मिलता था या प्यास बुझाने के लिए ना ही जल। वह भगवान की पूजा में ही लगा रहा।

एक रात को स्वप्न में राजा ने भगवान की आवाज सुनी यथा - 'सम्राट से कहो कि उसके सारे पैसे कांचीपुरम् में जमा की जाएगी।' सम्राट ने राजा को अपने मंत्रियों तथा प्रधान सेनापति के साथ ले गया। वहाँ वागावती नदी के कूल पर बहुत सारी स्वर्ण मुद्रायें थैलियों में भरे पडे दिखाई दिये। वे मुद्रायें इतनी थीं कि उससे न ही सम्राट का कर्ज उतर जाता था, बल्कि नीलन अपने जीवन भर के समय, हर दिन एक हजार आठ लोगों को भर पेट खिला भी सकता था। इतनी संपदा नीलन को मिली।'

चोल सम्राट ने तब अनुभव किया कि राजा नीलन की भक्ति उत्तम है। उन्होंने राजा से क्षमा याचना की क्योंकि उन्होंने राजा को दण्ड देकर सताया था। राजा से यह भी कहा गया था कि उनको कभी शुल्क देने की आवश्यकता नहीं है, वे उस धन का सदुपयोग कुछ और लोगों को भोजन खिलाने के लिए प्रयुक्त करें। जब भी भक्त विपदा में रहता है, तब भगवान उनका उद्धार करने स्वयं आता है।

48. श्रेष्ठ दान

कुरुक्षेत्र की जीत के बाद पाण्डव राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध कराया था। भारत के सभी राज्यों के राजाओं का स्वागत किया गया था। याग को जिस भांति मनाया गया था, उसके वैभव की प्रशंसा सभी लोग करने लगे थे। युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों, निर्धनों तथा अभागों को बहुत सारा धन एवं भेंट दान में दिया था। सभी को भोजन खिलाया गया। राजाओं ने इस प्रकार की प्रशस्ति की थी कि युधिष्ठिर जैसा लोकोपकारी कोई दूसरा नहीं होगा।

याग करते समय, कहीं से, अचानक यागशाला में एक नेवला आ गया था। उसके शरीर का एक पार्श्व सुवर्ण की भांति झिलमिला, रही थी। वह सभी दर्शकों के बीच खड़ा होकर, उपहास करते हुए हँसा। सभी लोग एक जानवर को एसा हँखते देखकर आश्चर्यचकित हुए। सभी लोगों ने यही माना था कि कोई दैत्य मारने को आया या विध्वंस करने के लिए आया। लेकिन उस नेवले ने सभी को संदेश दिया, यथा -

'यहाँ उपस्थित हे श्रेष्ठ राजा, ब्राह्मण वरों, मेरी बात सुनो। युधिष्ठिर के द्वारा दिए जानेवाले भेंट, दान आदि को क्या आप विभवपूर्ण तथा अद्वितीय मान रहे हो? यह दान उस दान के समान नहीं है जो इससे पूर्व एक निर्धन ब्राह्मण ने कभी दिया था। वह बहुत ही श्रेष्ठ था। अब जो दान दिया जा रहा है, वह महत्वहीन है। आप लोग इसकी प्रशंसा इतनी ऊँची आवाज में कर रहे हो?'

नेवले ने जवाब देते हुए ऐसा कहा -

'हे विप्रश्रेष्ठ, मैं ने एक भी अपशब्द नहीं कहा। मैं धर्मराज से जलता नहीं हूँ। मेरा अभिप्राय है कि जो दान उस निर्धन ब्राह्मण ने किया था, वैसा दान यहाँ पर किया नहीं जा रहा है। निर्धन ब्राह्मण ने जो दान दिया था, उसके परिणामस्वरूप उस ब्राह्मण की पत्नी, उसके पुत्र एवं पुत्र - वधू को स्वर्गलोक में स्थान मिला। मैं उसका साक्षी हूँ। अब मैं उसका पूरा विवरण प्रस्तुत करता हूँ, आप सब सुनिए' -

कुरुक्षेत्र युद्ध से पहले एक निर्धन ब्राह्मण ऊँचावृत्ति करके अपना जीवन जी रहा था। वह नीचे गिरे हुए धान को भी उठाता था और खाना बनवाता था। परिवार के सभी सदस्य उस भोजन को बाँटकर खाते थे। जितना एक दिन के लिए चाहिए था, उतना ही वह माँगता था। कभी- कभार उनको जब खाने को कुछ भी नहीं मिलता था, तब जाकर

पूरा परिवार भूँखों ही रह जाता था । एक बार उस राज्य में अकाल पड़ा । खेती- बाडी के सारे कार्यक्रम वर्षा के घाटे में गये थे । ऐसी स्थिति में निर्धन ब्राह्मण को अनाज का एक दाना भी नहीं मिलता था । वे बहुत बार केवल पानी पीकर पेट भर लेते थे ।

एक दिन उसका भाग्य ऐसा खुला कि उसे एक लोटे भर का मक्का धान्य मिला । परिवार के सदस्यों ने दोपहर के भोजन के लिए उसे पीसकर खाने को तैयार रखा । उसी समय एक भूखा ब्राह्मण वहाँ आया । उसे घर के अंदर अतिथि के रूप में बुलाया गया तथा उसे भोजन के लिए स्वागत किया गया । तब अतिथि ने ऐसा कहा -

'मैं एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ । मैं याचना करके अपने परिवार की भूख मिटाता हूँ । मेरे पास जितना है, उतना दूँगा, आप कृपया उसे स्वीकार करके तृप्त होइए ।'

पहले दरिद्र ब्राह्मण ने अपने हिस्से का पिसा मक्का परोसा । इससे अतिथि की भूख नहीं मिटी । उसने खाने को कुछ और माँगा । ब्राह्मण ने अपनी पत्नी की ओर दृष्टि दौडाई । उसको अपने पति के संकेत ने सचेत किया और उस गृहिणी ने अपना हिस्सा परोसा । ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा - 'चींटियाँ भी अपनी पत्नी व संतान के लिए अन्न ले आकर खिलाती हैं । लेकिन मैं तुम्हारे हिस्से को भी छीनकर तुम्हें भूखा छोड़ रहा हूँ । दूसरों के अन्न को छीनकर उनको भूखों सताकर मैं जो दान दे रहा हूँ, इसका मुझे क्या ही फ़ल मिलेगा?'

पत्नी ने पति की बात को टोक कर कहा - 'हम दोनों ने दांपत्य जीवन में बंधकर शास्त्रानुरूप अच्छे - बुरे, सुख - दुःख में साथ रहने का वादा किया । उसके अनुरूप तुम जब भी विपदा में फ़ँस जाते हो, तब तुम्हारी रक्षा करना मेरा दायित्व बनता है । अतिथि को तृप्त करना ही हमारा दायित्व है ।'

अतिथि ने दूसरे भाग को भी खा लिया । फ़िर भी उसकी भूख नहीं मिटी । वह दोबारा खाना माँगने लगा । अब ब्राह्मण के पुत्र की बारी आई । पुत्र ने अतिथि को अपना हिस्सा परोस दिया । ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा - 'हे वत्स! युवा तथा वृद्ध ही भूख को सहन कर सकते हैं । लेकिन तुम्हारे जैसे बच्चे सह नहीं सकते । मैं तुम्हें भूखा रख रहा हूँ । इसके लिए मुझे तो अपने ही से घृणा हो रही है ।' लेकिन बेटे ने अपने पिता से कहा - 'हे पिताजी! अतिथि को भरपेट खिलाते समय पिताजी का साथ देना, धर्मानुसार पुत्र का दायित्व बनता है । मैं तो आपका ही हिस्सा हूँ । इसीलिए मेरे खाने का हिस्सा भी आप ही का बनता है । कृपया आप अतिथि के भूख को मिटाकर उन्हें तृप्त करिए ।'

अतिथि सब कुछ ध्यानपूर्वक देख रहा था । उसने बच्चे को आशीर्वाद दिया यथा - 'तुम्हारे संस्कारों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । भगवान तुम्हारी भला करे ।' अतिथि ने बच्चे के द्वारा दिये गये मक्के को भी खा लिया । फ़िर भी वह भूखा ही दिखाई दिया । उसने पुनः ब्राह्मण की ओर देखते हुए कुछ और मक्के को मंगवाने का संकेत किया । दरिद्र ब्राह्मण को यह नहीं सूझ रहा था कि वह अब अतिरिक्त मक्का कहाँ से लाये इस ब्राह्मण के पेट को भरने के लिए । उसके शंकायुक्त चेहरे को देखकर उसकी बहू ने अपना हिस्सा भी लाकर रख दिया । ब्राह्मण को ऐसा लगा कि वह अपनी बहू के प्रति भी क्रूरता प्रकट कर रहा है । ऐसा दान देते समय उस ब्राह्मण को बहुत बुरा लगा और वह अपनी बहू से कहने लगा - 'अगर मैं तुम्हारा अन्न खींच लूँगा तो मैं पापी बन जाऊँगा । तुम तो अभी उम्र में छोटी हो और इसलिए मेरे या तुम्हारी सासु माँ की भाँति भूखों रह नहीं सकती हो ।'

बहू ने अपना भाग सौंपते हुए कहा - 'आप मेरे भगवान के भगवान हो, मेरे नाथ के नाथ हो । अगर आप अतिथि के भुख को दूर करोगे तो

आपके सद्व्यवहार के फल में से थोड़ा पुण्य मुझे भी मिलेगा । इसलिए मेरे भाग के अन्न को देकर अतिथि के भूख को दूर कीजिए ।'

अतिथि ने उसे भी आशीवर्चन दिया । अब खाने के बाद उसके चेहरे से तृप्ति का संकेत मिला । उसने कहा यथा - ''आपने जो अन्नदान किया, वह इस विश्व में अद्वितीय ही है । देखो, देवतागण तुम लोगों पर स्वर्ग से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं । गंधर्व आदि भी तुम लोगों को देखने तथा आशीर्वाद देने यहाँ आये हुए हैं । तुम्हारे दान के कारण तुम्हारे सारे पूर्वजों ने स्वर्ग में स्थान प्राप्त कर ही लिया है । जो भूखे रहते हैं, वे सामान्तया धर्म के पथ को छोड़ देते हैं, लेकिन आप लोग भूखों रहते हुए भी अतिथि के पेट को भरने का धार्मिक काम नहीं छोड़ा । जो लोग राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करने के बाद के फ़ल को प्राप्त करते हैं, वैस फ़ल आज आपने दान करके प्राप्त किया है । तुम लोगों को स्वर्ग में ले जाने के लिए वहाँ से दिव्यरथ आया हुआ है । भगवान तुम्हारी भला करे ।''

अतिथि वहाँ से अदृश्य हुए । नेवले ने उस गाथा को आगे बढ़ाया, यथा - 'इस परिवार जिसने स्वर्गलोक को प्राप्त किया, उसका मैं साक्षी हूँ । क्योंकि जहाँ पर ब्राह्मण ने पिसा हुआ मक्का रखा था, उसके अति निकट कर मैं बैठा था । जैसे ही मैं ने उस मक्के को सूंगने लगा, मेरा सिर स्वर्ण की भांति चमकने लगा । उसके बाद मैं उसमें जाकर लोटने लगा और जिस - जिस अंग को आटा लगने लगा, वे सारे अंग भी स्वर्ण की भांति चमकने लगे । मैं अपने पूरे शरीर को स्वर्ण की भांति प्रज्जवलित कराना चाहता हूँ । यह मेरी इच्छा है । इसलिए जहाँ - जहाँ दान दिया जाता है, वहाँ - वहाँ मैं जाता हूँ । इसके लिए मैं बहुत सोर यागशालाओं में गया जहाँ पर भद्र परिमाण में दान दिये जाते हैं । मुझे पता चला कि यहाँ युधिष्ठिर अद्वितीय रूप में दान दे रहे हैं । लेकिन आप देख रहे हो, मेरा शरीर अभी तक पूर्णतया स्वर्ण की आभा नहीं ले पाया ।'

''तुम सभी लोगों ने उस दरिद्र ब्राह्मण की दानशीलता की गाथा सुनी । उस ब्राह्मण के पूरे परिवार ने अपने पास के समस्त को दान में दिया जो उनके जीवित रहने के लिए बहुत ही आवश्यक था । यहाँ युधिष्ठिर ऐसा दान दे रहा है जो बहुत कम है और इसको देने के बाद भी उसके पास अतिरिक्त दौलत रहती है और उसे किसी चीज की कमी अनुभूत नहीं होती । हे विप्रवकों! अब आप ही कहिए कि किसका दान सबसे श्रेष्ठ है - दरिद्र ब्राह्मण का या युधिष्ठिर का?''

इस गाथा को सुनाकर नेवला अदृश्य हो गया ।

49. शर्मिष्ठा

शुक्राचार्य, दानव राजा वृषपर्व के गुरू थे । देवयानी, शुक्राचार्य की प्रिय पुत्री थी । युवराणी शर्मिष्ठा, वृषपर्व की पुत्री थी । देवयानी और शर्मिष्ठा जिग्री सहेलियाँ थी ।

एक दिन को देवयानी और शर्मिष्ठा, जंगल में विहार के लिए गई थीं । उसी जंगल के एक तालाब में दोनों नहाने गईं । दोनों ने अपने वस्त्र उतारकर कूल पर रख दिए । इतने में जोरदार हवा के बहने के कारण, दोनों के कपडे तितार - बितर होकर मिल गये । शर्मिष्ठा ने पहले तीर पर आकर देवयानी के कपडे पहन लिये । बाद में देवयानी बाहर निकली । उसने इन बदले कपड़ों को देखा । जब उसने देखा कि देवयानी उसके कपडे पहनी हुई है, तब वह शर्मिष्ठा की गलती को दिखाया । दोनों सहेलियाँ एक - दूसरे को कोसने लगीं ।

'तुम जानती हो न कि मेरे पिताजी इस राज्य के अध्यक्ष हैं' - शमिष्ठा ने कहा । 'तो क्या हुआ? मेरे पिताजी सभी दानवों के गुरु हैं, तुम्हारे पिताजी संग । सभी को मेरे पिताजी के सामने नतमस्तक होना ही पड़ता है ।'

''तुम्हारे पिताजी, याद रख, मेरे पिताजी की वदान्यता पर जीते हैं। दोनों के बीच का झगडा इतना छिड गया कि शर्मिष्ठा की दानव सहेलियों ने देवयानी को एक सूखे कुँए में धकेलकर, उसे अकेली छोड़कर सभी वहाँ से चली गई। वह बेचारी बाहर निकल नहीं पाई। वह उसी कुँए में रह गईं। बाहर निकल नहीं पाई।

तभी ययाती (चक्रवर्ति) उस ओर आया। ये पूरुवंशज थे। वह शिकार खेलने के लिए आया। उसने कुँए से रोने की आवाज सुनी। कुँए में उसने झांककर देखा।

रोती देवयानी को देखकर, ययाति ने अपने हाथों को सहारा देकर देवयानी को उस कुँए से बाहर निकाला। दोनों ने एक - दूसरे का परिचय प्राप्त किया। देवयानी ने तब से वृषपर्व की राजधानी में कदम नहीं रखने का निर्णय लिया।

देवयानी ने ययाति से प्रेम किया। उसने कहा - 'हे सम्राट आपने मेरा दाहिना हाथ पकड़ा है। धर्मशास्त्र के आनुसार इसका अर्थ यह हुआ है कि तुमने मुझे पत्नी के रुप में स्वीकार किया। मेरा अभिप्राय भी यही है कि तुम ही मेरे लिए श्रेष्ठ वर हो।'

ययाति ने उत्तर दिया कि - 'मैं क्षत्रिय हूँ, तुम ब्राह्मण बाला हो। तुम दानवों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री भी हो। ऐसे में तुमको अपने पिताजी से अनुमति लेनी होगी।' ऐसा कहते हुए ययाति चला गया।

शुक्राचार्य को सारा समाचार मिला था। उसकी पुत्री ने जो वादा किया कि वह राजधानी में कदम नहीं रखेगी, तब शुक्राचार्य ने स्वयं यह निर्णय लिया कि पुत्री के पास आकर उसे समझा - बुझाकर राजधानी में ले जायेगा। उसकी पुत्री जो कुँए के पास एक पेड़ के नीचे, बैठी हुई थी, उसके पास शुक्राचार्य पहुँचा।

देवयानी किसी भी हालत में किसी से भी आदर्श या नीतिपरक विचारों को सुनना नहीं चाह रही थी । उसने अपने पिताजी से कहा कि शर्मिष्ठा बहुत हठी है । देवयानी ने शुक्राचार्य के क्रोध एवं अहंकार को बढ़ाते हुए उससे प्रश्न किया, यथा - क्या तुम राजा के वैभव को बढ़ा - चढ़ाकर गुणगान करने वाले चारण - व्यवसाई हो? परोपकारी, राजा पर आश्रित परान्नजीवी हो क्या तुम?'

ऐसा कहती हुई वह बहुत - बहुत रोने लगी । शुक्राचार्य अपने घायल दम्भ से विचलित हुआ । शर्मिष्ठा ने जो जिद्दी तथा अशिष्ट कुकर्म किया, उसके लिए शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा को सबक सिखाना चाहा ।

देवयानी इसे सुनकर अतिप्रसन्न हुई ।

शुक्राचार्य, सीधे वृषपर्व के पास बिना समय गँवाये गया । उसने राजा से कहा - 'हे राजा! अब आगे मैं तुम्हारी सेवा कभी नहीं कर सकता । तुम्हारे सेवकों को मुझे सामना करना पडा जब तुम्हारे सेवकों ने कच को मारा था । वह मेरा उत्तम शिष्य था जिसने मेरी सेवा बड़ी श्रद्धा के साथ किया करता था तथा वह किसी पाप कर्म से ग्लानि मेहसूस नहीं की । अब तुम्हारी बेटी ने मेरी बेटी देवयानी का अपमान किया, उसे घायल किया । चूँकि मेरी बेटी इस राज्य में रहना नहीं चाहती, इसलिए, मैं भी यहाँ रहना बिलकुल पसंद नहीं करता हूँ ।'

वृषपर्व, शुक्राचार्य के बिना रह ही नहीं सकते थे । इसलिए वृषपर्व अपने कर्मचारी वर्ग को लेकर देवयानी के पास गया तथा उससे क्षमा माँगी । इतना करने के बावजूद, देवयानी ने एक शर्त पर राजा को क्षमा करने की बात कही । वह इस प्रकार है - ''जहाँ भी मैं विवाह करके जाऊँगी, वहाँ पर शर्मिष्ठा को मेरी सेविका बनकर आजीवन मेरी सेवा करनी पडेगी ।''

जब राजा ने शर्मिष्ठा से देवयानी की माँग की बात कही, शर्मिष्ठा ने बेझिझक अपने पिताजी के वास्ते अपना जीवन त्यागने के लिए तैयार हो गई । उसने अपने पिताजी से कहा - ''मेरे पिताजी कभी अपने राजगुरु से च्युत नहीं रहेंगे । मेरे कुकर्म के कारण उनको दण्ड नहीं मिलना चाहिए ।''

जो निर्णय शर्मिष्ठा ने लिया, वह अत्युत्तम, श्रेष्ठ माना गया ।

50. शिबि चक्रवर्ती

कभी किसी समय में शिबि नामक एक श्रेष्ठ राजा रहता था । वह बहुत उदार एवं दानशील व्यक्ति था और इसलिए बहुत यश प्राप्त किया । उसकी कीर्ति पूरे विश्व में व्याप्त होकर स्वर्ग तक पहुँच गया था ।

स्वर्गाधिपति इन्द्र ने शिबि के यश की वास्तविकता की परीक्षा लेना चाहा । इन्द्र और अग्निदेव दोनों स्वर्ग से निकले । अग्नि ने पंडुक का तथा इंद्र ने बाज का रूप धारण किया । अग्नि आगे - आगे अपने पंख पसारकर ऐसा उड रहा था मानो वह भयभीत होकर भाग रहा हो । पीछे - पीछे क्रुद्ध बाज यानी इंद्र पंख पसारकर उड रहा था मानो वह पंडुक को डरा रहा हो । दोनों सीधे राजा शिबि के महल में पहुँचे।

शिबि अपने उद्यान में निर्धनों को दान दे रहा था । पंडुक साधे आकर शिबि की कलाई पर आकर बैठी तथा आँसू भरे भयकंपित आँखो से देखने लगी । तुरंत शिबि ने उसे अपने हाथों में लिया । उसके पीठ पर थपथपाते हुए राजा ने कहा - 'डर मत पंडुक, मैं तुम्हें सभी अडचनों से बचाऊँगा ।'

राजा जैसे ही कह रहा था, उसी दौरान बाज ने आकर राजा के हाथों से पंडुक को छीनकर ले जाने का प्रयास किया । इतने में राजा ने हाथ उठाकर बाज को रोका । बाज राजा पर आगबबूला होकर, आदमी

की भांति बोलने लगा, यथा - 'यह पंडुक मेरा शिकार है, मैं तो उसे सुबह से पीछा कर रहा था । तुम मुझे रोकने वाले कौन हो?'

बाज को आदमी जैसे बोलते हुए देख, शिबि ने जवाब दिया यथा - 'मैं तुम्हें नहीं जानता । हे बाज! एक पक्षी, आदमी जैसे कैसे बोल पा रहा है। इस पंडुक ने भयभीत होकर मेरा आश्रय चाहा । इसलिए हर कष्ट से इसको बचाना अब मेरा दायित्व बनता है । मैं तुम्हें इसे छीनकर अपना शिकार बनाने नहीं दूँगा ।'

तब बाज ने कहा - 'हे राजा! तुम दयावान व्यक्ति के रूप में ख्यात हो । इसीलिए हर आर्त को बचाना शायद तुम्हारा कर्त्तव्य हो । लेकिन क्या तुम्हारी आर्द्रता केवल पंडुक तक ही सीमित है? मेरा क्या होगा? क्या मैं तुम्हारी दयालुता को प्राप्त करने लायक नहीं हूँ? मैं बड़ा पक्षी हूँ और मैं केवल छोटे पक्षियों को खाकर जीता हूँ । मेरे शिकार को मुझसे दूर करके, मुझे मृत्युघाट पर उतार रहे हो, क्या यही तुम्हारा धर्म, कर्त्तव्य है?'

शिबि चक्रवर्ती, मूक जैसा बन गया । बाज मानव की भांति बोल ही नहीं रहा था, बल्कि उसकी भांति वाद-विवाद भी कर रहा था । अब राजा को दोनों ओर के प्रति जो कर्तव्य था, उसको अनिवार्य रूप से निभाना पड़ गया था । उसने बहुत - बहुत सोचा । अंत में उसने ऐसा कहा - 'हे बाज! जो भी बात तुम कह रहे हो, वह सत्य है । मैं तुम्हें भूखो मरने नहीं दूँगा । मैं इस भययुक्त पंडुक को भी दे नहीं सकता । अगर तुम्हें पंडुक की जगह, दूसरे प्रकार के माँस का आयोजन करूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है न?'

बाज ने कहा - 'हे राजा जब तक मेरी भूख नहीं मिटती, तब तक उसके बदले दूसरे प्रकार सी माँस को खाना बना हूँ । पंडुक के वजन से

समान का खाना मुझे देना पडेगा । अगर थोड़ा भी कम हुआ, तो वह मुझे स्वीकार्य नहीं होगा ।' उसने राजा से पूछा - 'लेकिन तुम किस प्रकार का माँस देना चाहते हो? तुम माँस को कहाँ से लाओगे? तुम इस पंडुक को बचाने के लिए, क्या किसी और प्राणी को मारोगे?'

शिबि ने तुरंत उत्तर दिया - 'नहीं, नहीं, तुम डरो मत, मैं किसी अन्य प्राणी को मारने की सोच भी नहीं रखता । इस पंडुक के बदले मैं अपना ही माँस दूँगा ।'

शिबि ने तब अपनी सेवकों की ओर मुड़कर उनको तोलने का तराजू ले आने की आज्ञा दी । सेवकों ने राजा की आज्ञा का पालन किया तथा तराजू को राजा के सामने रखा । शिबि ने पंडुक को तराजू के एक ओर रखा । उसने तलवार निकालकर अपने शरीर से छोटे - छोटे माँस के टुकडे काटकर दूसरी ओर रखने लगा । लेकिन आश्चर्य! छोटा- सा पंडुक अपना वजन बढ़ाने लगा और जितना भी माँस रखा जा रहा है, उससे तराजू समता को पा नहीं रहा था । शिबि, अपने शरीर से माँस के टुकडे निकाले ही जा रहा था । इतना माँस कट गया कि उसके शरीर में काटने के लिए थोड़ा - सा माँस भी नहीं बचा था । पंडुक के वजन से आश्चर्यचकित होकर, शिबि स्वयं तरीजू पर चढ़ गया । अब तराजू दोनों ओर समता को प्राप्त करने लगा । राजा, अब बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि कम-से-कम अब वह बाज को माँस दे पा रहा था । बाग में उसने बाज से पूछा - 'हे बाज! मेरा वजन पंडुक के वजन के समान है । तुम कृपया मुझे रखा लो और पंडुक को छोड़ दो ।'

जैसे ही राजा ने इन शब्दों को मुखरित किया, तैसे ही आसमान से देवतागण जो इस परीक्षा को देख रहे थे, अपनी प्रसन्नता कों करताल से प्रकट करने लगे । उन्होंने दिव्य मंगल वाद्य को बजाकर पुष्पवृष्टि करने

लगे । पंडुक तथा बाज ने अपने रूपों को छोड़कर दिव्य विभव रूप धारण किया । शिबि इस सबको आश्चर्यपूर्वक देखने लगा ।

इन्द्र ने तब कहा - 'ओ राजा! मैं इन्द्र और ये अग्नि देव हैं, जो स्वर्ग से आपकी परीक्षा लेने आये । तुमने अपने को अपने नाम से भी श्रेष्ठ दिखा दिया । तुम भगवान से दीर्घायु तथा संपदा प्राप्त कर जीवित रहोगे । जब तक सूरज तथा चांद अपने नाम से भी रहेंगे, तब तक तुम्हारा श्रेय भी जिन्दा रहेगा ।'

इन शब्दों को कहते हुए इन्द्र ने शिबि को अपने हाथ से छुआ । आश्चर्य! शिबि के शरीर के सभी घाव पूर गये । राजा ने पुनः पूर्ववैभव प्राप्त किया तथा शक्तिशाली बनकर दिखाई देने लगा । उन्होंने देवतागण को प्रणाम किया । वे शिबि को आशीर्वचन देकर अपने - अपने स्थानों में वापस लौट गये ।

* * *